अंक द्वितीय एवं तृतीय (जनवरी से जून एवं जुलाई से दिसम्बर, 2017)

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

कृषि ज्ञान गंगा

अर्द्धवार्षिक पत्रिका

भाकृअनुप-कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान
(आई.एस.ओ. 9001-2015)
जोन-II, जोधपुर - 342 005 (राजस्थान)

भाकृअनुप ICAR

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

अंक द्वितीय एवं तृतीय (जनवरी से जून एवं जुलाई से दिसम्बर, 2017)

कृषि ज्ञान गंगा

अर्द्धवार्षिक पत्रिका

भाकृअनुप
ICAR

भाकृअनुप-कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान

जोन-II, जोधपुर - 342 005 (राजस्थान)

(आई.एस.ओ. 9001-2015 प्रमाणित संस्थान)

संरक्षक एवं प्रकाशक

डॉ. सुशील कुमार सिंह

निदेशक

प्रधान संपादक

डॉ. एम.एस. मीना

प्रधान वैज्ञानिक (कृषि प्रसार)

अध्यक्ष, हिन्दी राजभाषा समिति

इस अंक में प्रकाशित आलेखों एवं रचनाओं में व्यक्त विचारों/आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है। अधिक जानकारी के लिए लेख में दिए गए लेखक के फोन नम्बर या ईमेल पर सम्पर्क करें।

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

डॉ. एम.एस. मीना, प्रधान संपादक

हिन्दी पत्रिका 'कृषि ज्ञान गंगा'

भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोन–II

(काजरी परिसर) जोधपुर 342 005 (राजस्थान)

फोनः 0291–2740516, 0291–2748412

फैक्सः 0291–2744367

ईमेलः krishigyanganga@gmail.com; atarijodhpur@gmail.com

वेबसाइटः www.atarijodhpur.res.in

मुद्रक

एवरग्रीन प्रिण्टर्स, जोधपुर 9414128647

डॉ. सुशील कुमार सिंह
निदेशक

भाकृअनुप-कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान
जोन–II, जोधपुर, (राजस्थान) 342 005
फोन: +91-291-2748412, 2740516 (का.); फैक्स: +91-291-2744367
ईमेल: atarijodhpur@gmail.com, zpd6jodhpur@gmail.com

आमुख

भारत में कृषि का अहम योगदान है, क्योंकि वर्ष 2016–17 में कृषि का सकल घरेलु उत्पादन में 17.32 प्रतिशत की हिस्सेदारी रही। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार स्तम्भ है तथा इस स्तम्भ को और मजबूत बनाने की आवश्यकता है इसके लिए भारत सरकार द्वारा विभिन्न कदम उठाये जा रहे हैं। सरकार द्वारा उठाये जा रहे विभिन्न कदमों में भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर की भी अहम भागीदारी है। यह संस्थान राजस्थान, हरियाणा व दिल्ली के कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से किसानों तक नवीन तकनीकियों एवं जानकारियों को पहुँचा रहा है जिससे किसान भाई कृषि को उपलब्ध संसाधनों में अधिक लाभप्रद बना सके।

किसानों तक कृषि आधारित तकनीकी जानकारियों को हिन्दी में सरल एवं सुगम माध्यम से पहुँचाने के लिए इस संस्थान ने ''कृषि ज्ञान गंगा'' अर्द्धवार्षिक हिन्दी पत्रिका के प्रथम अंक का प्रकाशन जून से जुलाई 2016 के रूप में किया। अंक के प्रकाशन से बहुत किसानों/महिलाओं ने कृषि सम्बन्धित सभी विधाओं में जानकारी प्राप्त करके महत्वपूर्ण तकनीकों को व्यावहारिक रूप से अपनायें। इसी कड़ी में संस्थान इस पत्रिका के द्वितीय अंक का प्रकाशन कर रहा है।

मैं इस पत्रिका में योगदान देने वाले लेखकों को धन्यवाद देता हूँ जिनके योगदान से समय पर द्वितीय एवं तृतीय अंक (जनवरी से जून एवं जुलाई से दिसम्बर, 2017) का संयुक्त प्रकाशन कर पाए। मैं संस्थान में कार्यरत हिन्दी राजभाषा समिति, सभी वैज्ञानिकों एवं कर्मचारियों को बधाई देता हूँ, जिनके प्रयासों से संस्थान में हिन्दी प्रयोग को गति मिली एवं यह प्रकाशन संभव हो पाया।

(सुशील कुमार सिंह)

डॉ. एम.एस. मीना
प्रधान वैज्ञानिक (कृषि प्रसार) एवं
अध्यक्ष, हिन्दी राजभाषा समिति

भाकृअनुप-कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान
जोन–II, जोधपुर, (राजस्थान) 342 005
फोन: +91-291-2748412, 2740516 (का.); फैक्स: +91-291-2744367
ईमेल: atarijodhpur@gmail.com, zpd6jodhpur@gmail.com

सम्पादकीय.....

सभी पाठकों को नमस्कार।

भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर तीन राज्यों जिसमें राजस्थान, हरियाणा व दिल्ली के कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से किसानों एवं महिला कृषकों तक कृषि की नवीन तकनीकियों और जानकारियों के प्रसार कर रहे है। इसी प्रयास को सफल एवं प्रभावी बनाने के लिए यह संस्थान अर्द्धवार्षिक हिन्दी पत्रिका ''कृषि ज्ञान गंगा'' का प्रकाशन कर रहा है।

अर्द्धवार्षिक पत्रिका के प्रथम अंक की सफलता के बाद द्वितीय एवं तृतीय अंक (जनवरी से जून एवं जुलाई से दिसम्बर, 2017) का संयुक्त प्रकाशन कर रहे हैं। जिसमें कृषि तकनीक एवं उसका सामाजिक–आर्थिक प्रभाव, फसल उत्पादन तकनीक, पशुपालन तकनीक, कृषि प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन, कृषि आय अर्जित करने की वैकल्पिक गतिविधियां, कृषि सलाहकारी एवं अभिनव योजनाएं एवं किसानों के लिए उपयोगी प्रश्नोत्तरी सम्मिलित कर रहे हैं।

आशा है, कि यह अंक किसानों के लिए लाभप्रद साबित होगा। मैं इस पत्रिका में भेजे हुए लेखों के लिए सभी लेखकों को बधाई देता हूँ कि उनके प्रयासों से हम पत्रिका का प्रकाशन कर पा रहे हैं। इस पत्रिका को अधिक ज्ञानवर्धक बनाने के लिए आपके सुझाव सदैव आमंत्रित हैं।

सधन्यवाद!

(एम.एस. मीना)
प्रधान संपादक

विषय-सूची

शीर्षक एवं लेखक	पृष्ठ सं.
खण्ड 1: कृषि तकनीकी एवं उसका सामाजिक-आर्थिक प्रभाव	
1. **सामुदायिक रेडियो: वर्तमान स्थिति एवं प्रासंगिकता** एम.एस. मीना एवं एस.के. सिंह	1
2. **भारतीय डेयरी विकास: भविष्य की चुनौतियां और रणनीतियां** आर.बी. काले, के. पोन्नूसामी, एम.एस. मीना एवं एस.के. सिंह	5
3. **सुरक्षित भोजन टोकरी: कृषि रसायनों से मुक्ति** उर्वशी नांदल एवं आर.पी. मीना	7
4. **खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में मददगार: गैर परम्परागत फसलें** दशरथ भाटी	11
5. **ग्रामीण क्षेत्रों के लिए कृषि आधारित उद्यमिता विकास** सोमा श्रीवास्तव, अनुराग सक्सेना, रंजय कुमार सिंह एवं भगवान सिंह	15
खण्ड 2: फसल उत्पादन तकनीक	
6. **बीजीय मसालों की उन्नत कृषि तकनीकी** बी.आर. मोरवाल, पी. पगारिया एवं एस. दास	24
7. **उद्यानिकी फसलों में टपक (बून्द-बून्द) सिंचाई का उपयोग एवं महत्व** बी.आर. मोरवाल, पी. पगारिया एवं एस. दास	29
8. **नेपियर घास: उत्पादन तकनीक एवं प्रबंधन** बी.एस. मीना, जी.एस. मीना, आर.के. मीना एवं बी.एल. ढाका	32
9. **शुष्क क्षेत्र में खजूर की उन्नत खेती** पी.एच. निकुंभे, पी.आर. मेघवाल एवं भगवान सिंह	36
10. **शुष्क क्षेत्र में चने की उन्नत कृषि तकनीकों द्वारा अधिक उत्पादन** भगवान सिंह, अनुराग सक्सेना एवं सोमा श्रीवास्तव	43
11. **बारानी क्षेत्रों में फालसा की वैज्ञानिक खेती से अधिक लाभ कमाना** मोती लाल मीणा, धीरज सिंह एवं चन्दन कुमार	51

12. **बेर में व्याधि व समन्वित कीट नियंत्रण** 55
ऋतु मावर, लाधु राम एवं ए.एस. तोमर

13. **गर्मी की जुताई-किसानों के लिये फलदायी** 58
लाधु राम, दीपेश एवं ऋतु मावर

खण्ड 3: पशुपालन तकनीक

14. **पशु-आहार में प्रोबॉयोटिक का महत्व एवं उपयोग** 61
पी.पी. रोहिल्ला

15. **पशुओं की प्रमुख बीमारियाँ एवं उनसे बचाव के उपाय** 65
बी.एस. मीना, बच्चू सिंह, आर.के. मीना एवं रामकिशन मीना

16. **भैंसों में सुप्त मदकाल की समस्या** 69
बी.एस. मीना, बच्चू सिंह, आर.के. मीना एवं रामकिशन मीना

17. **घर के पिछवाड़े मुर्गीपालन में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग** 73
बी.एल. डाँगी एवं प्रदीप पगारिया

18. **डेयरी व्यवसाय-रोजगार एवं आर्थिक विश्लेषण** 76
जे.एन. यादव, ऐ.के. चौहान, हरेन्द्र यादव एवं वी.पी.एस. यादव

19. **भारतीय डेयरी क्षेत्र के विकास का सामयिक विश्लेषण** 80
आर.बी. काले, के. पोन्नूसामी, एम.एस. मीना एवं एस.के. सिंह

खण्ड 4: कृषि प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन

20. **फलों के जैम एवं मुरब्बे तैयार करने की विधियां** 83
रितु सिंह

21. **आम का मूल्य सवंर्धन** 86
हेमराज मीणा, अशोक कुमार परन्दियाल एवं गोपाल लाल मीणा

खण्ड 5: कृषि आय अर्जित करने की वैकल्पिक गतिविधियां

22. **गृहवाटिका: खाद्य सुरक्षा का विकल्प** 89
राकेश कुमार एवं रितु सिंह

23. **स्वरोजगार पायें: मधुमक्खी पालन अपनाएं** 93
प्रद्युमन भटनागर, जय नारायण भाटिया, फतेह सिंह, प्रेम लता एवं हरिओम

24. **पशुपालकों के लिए उपयोगी सलाह** 96
जी.एस. मीना, बी.एस. मीना, आर.के. मीना एवं के.सी. मीना

हिन्दी चेतना मास का आयोजन 100

खंड–1

1 सामुदायिक रेडियो: वर्तमान स्थिति एवं प्रासंगिकता

एम.एस. मीना[1] एवं एस.के. सिंह[2]

1. प्रस्तावना
2. सामुदायिक रेडियो के लाभ
3. सामुदायिक रेडियों की समस्याएं
4. सामुदायिक रेडियो की प्रक्रिया
5. सामुदायिक रेडियो की वर्तमान स्थिति

1. प्रस्तावना

भारत में जहां एक तरफ एंटरटेंनमेंट मीडिया हर साल तरक्की की नई ऊँचाई छू रहा है, वहीं दूसरी तरफ, एक बड़ी आबादी कम्यूनिटी रेडियो यानी सामुदायिक रेडियो के नाम से बहुत कम परिचित है। सामुदायिक रेडियो का दायरा बेहद छोटा होना और इसके प्रसारण और फायदा पाने वालो का बेहद आम और स्थानीय होना इसके प्रमुख कारण है। यह स्पष्ट है कि रेडियो की ताकत हमारी और आपकी सोच से भी परे है। निजी एफएम चैनल जहाँ बाजार को दृष्टिगत रखते हुये फिल्म संगीत, प्रायोजित कार्यकर्मों तथा विज्ञापनों के प्रसारण द्वारा राजस्व कमाने की प्रतिस्पर्धा में जुटे हुए है वही दूसरी और आकाशवाणी अपनी सामाजिक प्रतिबद्वता को स्वीकार करता है। देश भर में बिछे रेडियो चैनलों के जाल के बावजूद लगातार यह महसूस किया जाता रहा कि कुछ है जो छूट रहा है, छोटे समुदायों के प्रसारण हितों और अधिकारों का पूर्णतया संरक्षण नहीं हो पा रहा है। सम्भवतः इसीलिए भारत में सामुदायिक रेडियो को वैधानिक मान्यता मिलते ही कई समुदायों का ध्यान इस ओर गया है।

किसी छोटे समुदाय द्वारा संचालित कम लागत वाला रेडियो स्टेशन जो समुदाय के हितों, उसकी पसंद और समुदाय के विकास को दृष्टिगत रखते हुए गैर–व्यावसायिक प्रसारण करता है, सामुदायिक रेडियो केन्द्र (स्टेशन) कहलाता है। यह संचार के क्षेत्र में क्रांतिकारी कदम है। सामुदायिक रेडियों, सार्वजनिक सेवा और वाणिज्यिक मीडिया से अलग प्रसारण का महत्वपूर्ण तीसरा स्तर है। यह स्थानीय लोगों को उनके जीवन से संबन्धित मुद्दों को स्वर देने के लिए एक मंच मुहैया कराता है। ऐसे सामुदायिक रेडियो स्टेशन द्वारा कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, समाज कल्याण, सामुदायिक विकास, संस्कृति सम्बन्धी कार्यक्रमों के प्रसारण के साथ–साथ समुदाय के लिए तात्कालिक कार्यक्रमों का प्रसारण किया जा सकता है ताकि उनकी चिंताओं को आवाज देने के लिए सशक्त माध्यम बन सके।

2. सामुदायिक रेडियो के लाभ

भारत में सामुदायिक रेडियो की लहर 90 के दशक में ही पैदा हो गई थी, जब 1995 में सुप्रीम कोर्ट ने फैसला सुनाया कि 'रेडियो तरंगें जनता की संपत्ति हैं।' हालांकि, यह एक अच्छी खबर जरूर थी, लेकिन शुरूआती दौर में सिर्फ शैक्षिक स्तर पर ही ऐसे स्टेशनों को खोलने की इजाजत मिली थी। जिसके तहत चैन्नई स्थित अन्ना विश्वविद्यालय का अन्ना एफएम पहला कैंपस सामुदायिक रेडियो बना, जिसका प्रसारण 01 फरवरी 2004 से आरम्भ हुआ और जिसके सभी कार्यक्रम आज भी विश्वविद्यालय के छात्र ही तैयार करते हैं। सामुदायिक रेडियो के प्रमुख लाभ निम्न हैं।

[1]प्रधान वैज्ञानिक (कृषि प्रसार), भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)।
ई–मेलः s.mohar.meena@gmail.com; Mobile: 88758-27538
[2]निदेशक, भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)।

- सामुदायिक रेडियो पर प्रसारण स्थानीय भाषाओं और बोलियों में होता है, अतः लोग इससे आसानी से जुडने में समर्थ होते हैं।
- सामुदायिक रेडियो, विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी को मजबूत करने की क्षमता रखता है।
- सामुदायिक रेडियो जहां, प्रत्येक राज्य अपनी अलग भाषा और सांस्कृति विरासत का कोष लिये है वहीं स्थानीय कलाकारों को समुदाय के समक्ष उनकी प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए मंच मुहैया कराता है।
- कृषि, शिक्षा, समाज कल्याण, स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में सकारात्मक सामाजिक बदलाव व सशक्तिकरण के रूप में सामुदायिक रेडियो एक आदर्श उपकरण है।

हालांकि, इसकी असल अहमियत का पता काफी पहले से है। फिर भी आज के समय में इसकी महत्ता और बढ़ गई है। उदाहरणः

(अ) सुनामी के वक्त इसका भरपूर इस्तेमाल हुआ, जब प्रसारण के तमाम हथियार ढीले पड़ गए थे। इसी सामुदायिक रेडियो की वजह से ही अंडमान निकोबार द्वीप समूह में करीब 14 हजार लापता लोगों को आपस में जोड़ा जा सका था।

(ब) यहीं नहीं केदारनाथ की तबाही के दौरान भी सामुदायिक रेडियो का कमाल देखने को मिला था, जब रेडियो हेनलवाणी, कुमाउ वाणी और मंदाकिनी की आवाज जैसे सामुदायिक रेडियो को सुनकर सेना के जवान संकट में फंसे लोगों का पता लगाते थे।

आपातकाल और त्रासदी के दौरान ही नहीं, सामान्य हालात में भी लोगों को अहम जानकारियाँ मुहैया कराने में भी सामुदायिक रेडियो अब तक काफी कारगर साबित हुआ है। इसके कुछ उदाहरण हैं–आंध्र में हैदराबाद से 100 किलोमीटर दूर पस्तापुर गाँव का सामुदायिक रेडियो और छत्तीसगढ़ का 'सीजीनेट स्वरा'। एक तरफ पस्तापुर गाँव का सामुदायिक रेडियो गरीब महिलाओं के लिए खेतीबाड़ी की सूचना देने के साथ–साथ उनकी एक आवाज बन कर उभरा है, तो वहीं दूसरी तरफ 2000 सिटिजन जर्नलिस्ट की मदद से चलने वाला 'सीजी नेट स्वरा' सामुदायिक रेडियो की पहुंच आज छत्तीसगढ़ के 50 हजार लोगों से ज्यादा हो चुकी है। इनकी तरह देश में कई और भी सामुदायिक रेडियो हैं जो अपने समुदाय की आवाज बन चुके हैं और इसकी असीम शक्ति से आम लोगों को वाकिफ करा रहे हैं।

3. सामुदायिक रेडियो की समस्याएं

सामुदायिक रेडियो स्टेशनों के वजूद पर आज कई तरह के खतरे मंडरा रहे हैं। इनमें अन्य बातों के अलावा आमदनी और विज्ञापन की मुश्किलें शामिल हैं। कई स्टेशन पिछले कुछ सालों में बंद हुए हैं। ऐसे रेडियो स्टेशनों के लिए केंद्र के स्तर से फंड नहीं मिल पाता और इनके लिए फंड जुटाने को लेकर कई कड़े नियम भी हैं। ऐसे में सामुदायिक रेडियो के लिए आवेदन देना भले ही आसान हो, लेकिन लाइसेंस हासिल कर लेना और फिर उसे लंबे समय तक चला पाना किसी परीक्षा से कम नहीं है।

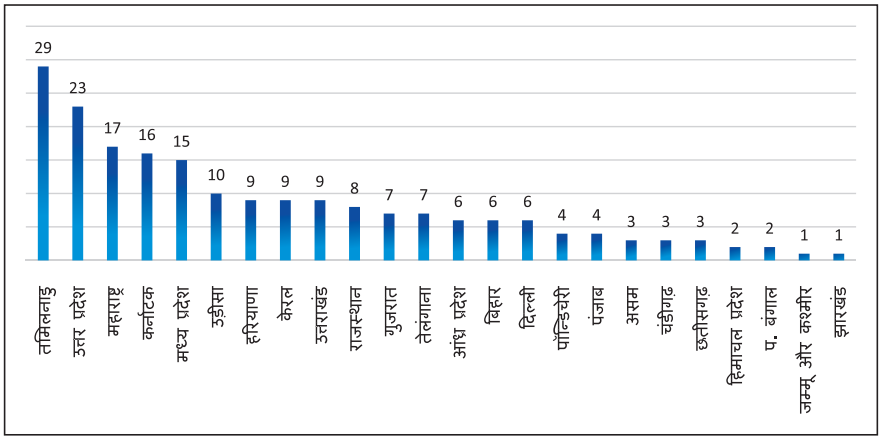

स्त्रोत–सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
http://mib.nic.in/WriteReadData/documents/Operational_._1.....pdf 21/01/2017

लेकिन, अगर देर–सवेर लाइसेंस मिल भी जाता, तो भी उनकी समस्याएं कम नहीं होती क्योंकि, 12 किलोमीटर के दायरे की सीमा तक में बंधे सामुदायिक रेडियो के साथ यह शर्त भी जुड़ी होती है कि उसके करीब 50 प्रतिशत कार्यक्रमों में स्थानीयता हो और जहां तक संभव हो, वे स्थानीय भाषा में हों। एक घंटे में 5 मिनट के विज्ञापनों की छूट तो है लेकिन प्रायोजित प्रोग्रामों की अनुमति नहीं है।

4. सामुदायिक रेडियो की प्रक्रिया

16 नवम्बर 2006 को भारत सरकार द्वारा एक नई कम्युनिटी रेडियो नीति को अधिसूचित किया गया। इसके अनुसार गैर–व्यावसायिक संस्थायें, जैसे स्वयंसेवी संस्थायें, कृषि विश्वविद्यालय, सामाजिक संस्थायें, भारतीय कृषि अनुसंधान की संस्थायें, कृषि विज्ञान केन्द्र तथा शैक्षणिक संस्था सामुदायिक रेडियो के लाइसेंस के लिए आवेदन कर सकती हैं। ऐसी पंजीकृत संस्थायें जो कम से कम तीन वर्षों से सामुदायिक सेवा के क्षेत्र में कार्य कर रही हों, सामुदायिक रेडियो के लाइसेंस के लिए आवेदन कर सकती हैं। इसके लिए कोई लाइसेंस फीस देय नहीं है। आवेदक को रु 2500/– के मामूली प्रोसेसिंग शुल्क के अतिरिक्त रु 25,000/– की बैंक गारंटी जमा करनी होती है। लाइसेंस मिलने पर इन्हें 100 वॉट के एफएम ट्रांसमीटर के जरिए प्रसारण करने की अनुमति मिलती है। इसका एंटेना अधिकतम 30 मीटर ऊँचाई तक स्थापित किया जा सकता है। ऐसे ट्रांसमीटर की पहुँच 12 किमी के घेरे तक सीमित होती है। केन्द्रों को अपने आधे कार्यक्रम यथासंभव स्थानीय भाषा या बोली में, स्थानीय स्तर पर ही बनाने होते हैं। भारत में निजी एफएम और कम्युनिटी रेडियो पर अब तक समाचारों के प्रसारण की अनुमति नहीं हैं। एक घंटे के प्रसारण समय में पाँच मिनट के विज्ञापन बजाए जा सकते हैं। प्रायोजित कार्यक्रमों के प्रसारण की अनुमति नहीं है किन्तु राज्य अथवा केन्द्र सरकार से प्रायोजित कार्यक्रम प्राप्त होने की दशा में इन्हें प्रसारित किया जा सकता है। वर्तमान समय में 200 सामुदायिक रेडियो स्टेशन कार्य कर रहे हैं, जिनमें से 76 गैर–सरकारी संगठनों द्वारा, 109 शैक्षणिक संस्थाओं और 15 राज्य कृषि विश्वविद्यालय/कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा संचालित हो रहे हैं।

5. सामुदायिक रेडियो की वर्तमान स्थिति

सामुदायिक रेडियो धीरे–धीरे एक नए जमाने के मीडिया का रूप लेता जा रहा है। अब जरूरत है तो बस इसे ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंच बनाने की और सरकार को लाइसेंस प्रक्रिया को आसान करने की। लाइसेंस प्रक्रिया आसान होने से दूर–दराज के गांवों में स्थित गैर–सरकारी संस्थान भी आवेदन कर सकेंगे और समाज में जागरुकता फैलाने में एक सशक्त और कारगर माध्यम के तौर पर इस्तेमाल हो सकेगा।

सारांश

सामुदायिक रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की भाषा स्थानीय होने के कारण इसकी पहुँच शहर से लेकर ग्रामीण स्तर तक है। सामान्य व असामान्य हालात में लोगों को अहम जानकारियाँ मुहैया कराने में सामुदायिक रेडियो काफी कारगर साबित हुआ है। वर्तमान युग डिजीटलीकरण का है इसलिए रेडियों को भी डिजीटलीकरण की आवश्यकता है। वर्तमान में रेडियों को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचाने और सरकार को लाइसेंस प्रक्रिया को आसान करने की आवश्यकता है।

सामुदायिक रेडियो केन्द्र, कृषि विज्ञान केन्द्र, टोंक (राजस्थान)

2

भारतीय डेयरी विकास: भविष्य की चुनौतियां और रणनीतियां

आर.बी. काले[1], के. पोन्नूसामी[2], एम.एस. मीना[3] एवं एस.के. सिंह[4]

1. प्रस्तावना
2. देसी नस्ल के पशुओं की उत्पादकता बढ़ाना
3. प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और उचित उपयोग
4. पशु चिकित्सा सुविधाओं में सुधार
5. दूध विपणन संरचना
6. पशु चिकित्सा विस्तार की भूमिका में सुधार

1. प्रस्तावना

भारतीय डेयरी क्षेत्र ने दूध उत्पादन में 8 गुना से अधिक वृद्धि हासिल कि है, जो 1950–51 से 17 करोड़ टन से बढ़कर 2015–16 में 155 मिलियन टन हो गया है। वर्तमान में प्रति व्यक्ति उपलब्धता (322 ग्राम प्रति दिन), 280 ग्राम प्रति दिन की अपेक्षा से अधिक है, यद्यपि भविष्य की मांग, बढ़ते हुए प्रति व्यक्ति आय के कारण, आहार पद्धति बदलने, तेजी से शहरीकरण और बढ़ते आबादी के कारण उत्पादन की वृद्धि को पार कर जाएगी। उत्पादन में भारी वृद्धि के बावजूद, उत्पादकता और उत्पाद की गुणवत्ता की कमी और उत्पादन में क्षेत्रीय असमानताएं भारत में चिंता का एक कारण बनी हुई है। 2021–22 तक 200 से 210 मिलियन टन दूध की अनुमानित मांग को पूरा करने के लिए, भारत को पिछले 10 वर्षों में पंजीकृत 4.5 मिलियन टन के औसत उत्पादन के मुकाबले प्रति वर्ष 6 मिलियन टन अधिक दूध का उत्पादन करना होगा। भारत में दूध का बड़ा हिस्सा छोटे किसानों द्वारा निर्मित किया जा रहा है जो कुल दूध उत्पादन में 70 प्रतिशत से अधिक योगदान करते हैं। जब तक आवश्यक गति पर दूध उत्पादन नहीं बढ़ाते, तब तक दूध की आपूर्ति में अंतर अधिक होने की संभावना है और आयात पर निर्भरता हो सकती है। इस बीच, दूध उत्पादकों के लिए दूध का उत्पादन पर्याप्त रूप से फायदेमंद नहीं है इसलिए वे आजीविका के वैकल्पिक स्त्रोतों की तलाश कर रहे हैं। भारतीय डेयरी क्षेत्र में संरचनात्मक परिवर्तन दिख रहा है क्योंकि कई किसान खेती के अलावा आजीविका के अन्य स्त्रोतों की ओर जा रहे हैं। वर्ष 2001 से 2011 (2011 की जनगणना) के दौरान 9 दशलक्ष तक देश में किसानों की संख्या में गिरावट आयी है, जिसका मतलब है कि कम हाथों से अधिक मुंह को खिलाना होगा।

इसलिए दूध की भविष्य की मांग को पूरा करने, क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने और डेयरी को और अधिक लाभकारी बनाने के लिए कुछ सुझाव दिए गए हैं।

2. देसी नस्ल के पशुओं की उत्पादकता बढ़ाना

राष्ट्रीय मवेशी आयोग ने सूचना दी कि आनुवांशिक सुधार के लिए पिछले कार्यक्रम सफल नहीं थे, खासकर देसी नस्लों का उन्नयन उन राज्यों में निरंतर संकर के माध्यम से किया गया, जहां खाद्य और चारा संसाधनों की

[1]वैज्ञानिक, भाकृअनुप–प्याज एवं लहसुन अनुसंधान निदेशालय, पूना, महाराष्ट्र ई–मेलः rkrajivndri@gmail.com; Mobile: 87428-04790
[2]प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा
[3]प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर, राजस्थान
[4]निदेशक, भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर, राजस्थान

उपलब्धता पर्याप्त मात्रा में नहीं थी। इसलिए पशु प्रजनन नीति के पुनर्निरिक्षण करके विशिष्ट क्षेत्रीय दृष्टिकोण के साथ प्रयास किया जाना चाहिए, जो खाद्य और चारा संसाधनों की कमी वाले वर्षायुक्त क्षेत्रों में अच्छी स्वदेशी नस्लों के संरक्षण पर केंद्रित है। गुजरात में गिर, आंध्र प्रदेश में ओंगोल और पुणगणुर नस्लों, हरियाणा में साहिवाल और थारपारकर, कर्नाटक में अमृतमहल, केरल के वेचूर जैसी अधिक उत्पादन क्षमता वाली नस्लें भारत में हैं। अंधाधुंध संकर–प्रजनन की वजह से शुद्ध स्वदेशी नस्लों की जनसंख्या में कमी आई है। इस प्रकार, जहाँ शुद्ध स्वदेशी नस्लें पायी जाती हैं वहां विदेशी नस्लों के साथ संकर–प्रजनन प्रतिबंधित होना चाहिए। शुद्ध स्वदेशी नस्लों के सुधार के लिए किसानों का देसी नस्ल संरक्षण, संघों का गठन, रोग मुक्त व उच्च गुणवत्ता के नर का संरक्षण तथा उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

3. प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और उचित उपयोग

तिलहन के केक के निर्यात पर प्रतिबंध होना चाहिए और गेहूं और अन्य फसलों के कटाई पर फसल काटने की मशीन का उपयोग पर प्रतिबंध होना चाहिए जिससे कि पर्याप्त मात्रा में गेहूं का भूसा उपलब्ध हो। देश में पशुओं के लिए कोई चारा संसाधन प्रबंधन प्रणाली नहीं है। देश भर में चारा बैंक नेटवर्क की स्थापना से चारे की कमी वाले क्षेत्रों में चारा की उपलब्धि की जा सकती है। चारे की कमी होने वाले राज्यों में खनिज मिश्रणों का उपयोग, हाइड्रोपोनिक्स, अजोला, साइलेज, यूरिया उपचार जैसे बेहतर खाद्य और चारा प्रौद्योगिकियों को किसानों तक हस्तांतरण के लिए अधिक जोर दिया जाना चाहिए।

4. पशु चिकित्सा सुविधाओं में सुधार

किसानों तक पशुपालन के बारे में उचित जानकारी की पहुंच बढ़ाने के लिए प्रयास किया जाना चाहिए। अपर्याप्त पशु चिकित्सा सुविधाओं तथा पशु चिकित्सा कर्मचारियों की कमी भी असंतुलित प्रगति का कारण है। वर्तमान पशुधन जनगणना के अनुसार, देश को 1.16 लाख पशु चिकित्सक अधिकारियों की जरूरत है और केवल 63,000 पशु चिकित्सक अधिकारी, भारतीय पशु चिकित्सा परिषद् के साथ पंजीकृत हैं, जिसका मतलब है कि मानव शक्ति में लगभग 50 प्रतिशत की कमी इसलिए पशु चिकित्सा विभाग में पशु चिकित्सक अधिकारियों की नियुक्ति पर प्राथमिकता देना चाहिए।

5. दूध विपणन संरचना

एक मजबूत संगठित दूध विपणन ढांचा केवल कुछ ही क्षेत्रों में तैयार हुआ है। इसलिए अन्य क्षेत्रों में डेयरी सहकारी संगठन के नेटवर्क के विकास के लिए और डेयरी को अधिक लाभप्रद बनाने के लिए किसान दूध उत्पादक कंपनियों के रूप में अधिक संगठित विपणन की नई पीढ़ी को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

6. पशु चिकित्सा विस्तार की भूमिका में सुधार

पशु चिकित्सा विस्तार कार्यकर्त्ता की भूमिका जानवरों के उपचार के लिए सीमित है। इसलिए नई प्रौद्योगिकियों के बारे में किसानों को शिक्षित करने के लिए उन्हें विस्तार कार्यकर्ता के रूप में कार्य करना चाहिए।

यह उपाय डेयरी उद्यम की स्थिति में सुधार करने के लिए और अंत में दूध की भविष्य की मांग को पूरा करने के लिए दूध उत्पादन में सहायक होंगे ।

3 सुरक्षित भोजन टोकरी: कृषि रसायनों से मुक्ति

उर्वशी नांदल[1] एवं आर.पी. मीना[2]

1. प्रस्तावना
2. रसायनों के दुष्प्रभाव को कम करना।
   2.1 खेत स्तर पर रसायनों के दुष्प्रभाव को कम करने के तरीके।
   2.2 घरेलू स्तर पर रसायनों के दुष्प्रभाव को कम करने के तरीके।
   2.3 भोज्य पदार्थों के सेवन पश्चात रसायनों के दुष्प्रभाव को कम करना।

1. प्रस्तावना

कृषि रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग का सबसे बुरा प्रभाव मानव को सहन करना पड़ रहा है। खानपान में प्रयोग होने वाले फल सब्जियाँ व अनाज रसायनों से दूषित होने के कारण मनुष्यों की उम्र लगातार घटती जा रही है। आज कृषि रसायनों के अत्याधिक प्रयोग से लोगों में कैंसर, उच्च रक्त चाप, मधुमेह, एन्जाइम असंतुलन, चर्म रोग व एलर्जी, सांस संबंधित बीमारियाँ, यादाश्त में कमी आना जैसी बीमारियाँ लगातार बढ़ रही हैं। हमें उन साधनों को पुनः खोजना होगा जो प्रकृति व मानव को बिना कोई नुकसान पहुचाएँ कीट एवं रोगों का विनाश कर सके। जैसे जैविक खेती द्वारा, ग्रह वाटिका लगाकर, प्रतीक्षा अवधि के बाद फल एवं सब्जियों की तुड़ाई, फल एवं सब्जियों को पानी से धोना, पानी में भिगोना एवं छीलना इत्यादि।

भारत में मुख्य रूप से प्रचलित कीटनाशकों के दुष्प्रभाव से अधिकतर लोग परिचित नहीं है जैसे कि एण्डोसल्फास छिड़की हुई सब्जियाँ व खाद्य पदार्थों में यदि घातक स्तर की अवशेष मात्रा है तो गर्भस्थ शिशु तथा यकृत पर जहरीला प्रभाव पड़ेगा, रोग बचाव क्षमता का ह्यास, शुक्राणुओं की संख्या व गुणवत्ता में गिरावट, पुरुषों में अंड ग्रंथियों और स्त्रियों में स्तन कैंसर की दर में वृद्धि होती है। इसी प्रकार मिथाइल पैराथियॉन कैंसर उत्प्रेरक का कार्य करता है, वहीं मेलाथियान कैंसर के साथ ल्यूकीमिया प्रेरक आनुवांशिक विकार, न्यूरोटाक्सीसिटी, एलर्जी एवं अल्सर जैसे दीर्घ कालिक दुष्प्रभाव डालता है तथा रोग बचाव क्षमता का ह्यास करता है। मोनोक्रोटोफॉस के दुष्प्रभाववव से तंत्रिका विकार उत्पन्न होते हैं। डाइमेथोएट कैंसर उत्प्रेरक प्रजनन तंत्र विकार एवं आनुवांशिक विकार उत्पन्न करता है। क्लोरोपाइरीफॉस से सिर दर्द, दृष्टि में धुंधलापन, असामान्य थकान, स्मरण शक्ति एवं मानसिक एकाग्रता का ह्यास होता है। सिन्थेटिक पाइरेथ्राइडस समूह के कीटनाशक कैंसर उत्प्रेरक आनुवांशिक विकार एवं गर्भस्थ शिशु में तंत्रकीय विकार उत्पन्न करता है। मेंकोजेब से घेंघा रोग, कार्बेन्डाजिम से अंड ग्रन्थियों की क्षति एवं शुक्राणुओं में कमी, केप्टान कैंसर उत्प्रेरक के रूप में घातक है। इसके अलावा खरपतवार नाशक भूमि के साथ–साथ मानव शरीर पर भी कई दुष्प्रभाव छोड़ते हैं। जैसे ट्राइक्लूरेलिन वर्ग के कारण डर्मेटाइटिस, लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या में कमी, ब्यूराक्लोर के कारण शारीरिक वजन में कमी व आंतरिक अंगों में दुष्परिवर्तन, पेराक्वार खरपतवारनाशी से पार्किन्सन रोग एवं आलजाइमर रोग होते हैं। सभी प्रकार के कीटनाशक, फफूंदनाशक, जीवाणुनाशी एवं खरपतवारशी मनुष्य के शरीर पर दुष्प्रभाव डालते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार पूरे विश्व के एक तिहाई बच्चों में रोग बदलते हुए पर्यावरण की देन हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार बदलते हुए पर्यावरण के कारण 1 करोड़ 30 लाख मृत्यु प्रतिवर्ष होती है।

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ, गृह विज्ञान, कृषि विज्ञान केन्द्र, राजसमन्द (राजस्थान)। ई–मेलः urvashinandal25@gmail.com; Mobile: 77268-12911
[2]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रधान, कृषि विज्ञान केन्द्र, राजसमन्द (राजस्थान)।

आज हमें उन साधनों को पुनः खोजना होगा जो प्रकृति व मानव को बिना कोई नुकसान पहुचाएँ कीट एवं रोगों का विनाश कर सकें। हमें इन रसायनों को अच्छी प्रकार से समझना चाहिए हम अपने स्वयं के स्तर पर कुछ सावधानियां रखकर व कुछ आसान तरीकों द्वारा इस्तेमाल किए गए रसायनों के असर को कम कर सकते हैं–

2. रसायनों के दुष्प्रभाव को कम करना

2.1. सबसे पहले–खेत स्तर पर रसायनों के दुष्प्रभाव को कम करना

- **अ. जैविक खेती द्वारा:** फसलों में कम से कम रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशी रसायनों का उपयोग करना चाहिए। पोषण प्रबंधन हेतु जैविक खाद (गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, हरी खाद) एवं जीवनाशी प्रबंधन हेतु नीम आधारित रसायनों, गौमूत्र, पंचगव्य, हल्दी, लहसुन एवं मिर्च के अर्क का उपयोग करना चाहिए।
- **ब. गृह वाटिका लगाना:** घर के पिछवाड़े में मौसम के अनुसार आवश्यक फल एवं सब्जियाँ उगानी चाहिए तथा उन्हें पूर्ण जैविक विधि से संरक्षित रखना चाहिए एवं सप्ताह में चार से पांच बार गृह वाटिका की सब्जियों का उपयोग करना चाहिए। गृह वाटिका में रासायनिक दवाओं का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।
- **स. प्रतीक्षा अवधि के बाद तुड़ाई:** कीटनाशी एवं फफूंदनाशी दवाओं की निश्चित प्रतीक्षा अवधि होती है उसके बाद इनका प्रभाव कम हो जाता है। अतः फल एवं सब्जियों की तुड़ाई प्रतीक्षा अवधि के बाद करने से रसायनों का दुष्प्रभाव न्यूनतम होता है। कीटनाशकों, फफूंदनाशकों, जीवाणुनाशकों व खरपतवारनाशकों की उचित मात्रा सही समय पर डालें व प्रतिक्षा अवधि के बाद सब्जियों व फलों का उपयोग करें तथा सम्पूर्ण जैविक व यांत्रिक उपाय अपनाने के बाद अंतिम हथियार के रूप में रासायनिक दवाओं का छिड़काव करें तथा प्रतिक्षा अवधि का विशेष ध्यान रखें व सिफारिश की गई मात्रा का ही प्रयोग करें।

जानवरों को खिलाए जाने वाले चारे वाली फसलों पर भी रसायनों, खादों व दवाओं का प्रयोग कम से कम या नहीं के बराबर करना चाहिए क्योंकि उनके दूध व दूध से बने पदार्थों के मनुष्य द्वारा सेवन से वे मनुष्य के भोजन चक्र में शामिल हो जाते हैं।

2.2 घरेलू स्तर पर रसायनों के दुष्प्रभाव को कम करना

- **पानी से धोना:** फल एवं सब्जियों को उपयोग से पहले कम से कम चार–पाँच बार अच्छी प्रकार से रगड़कर बहते ठंडे या हल्के गरम पानी से धोना चाहिए। इससे ऊपरी सतह पर लगे रासायनिक दवाओं के अवशेष धुल जाते हैं।
- **पानी में भिगोना:** यदि फल एवं सब्जियों को एक घंटे तक पानी में भिगोकर रखा जाए तो रसायनों का अवशेष एक तिहाई घट जाता है। फिर हल्के हाथ से रगड़कर इन्हें रसायन रहित कर सकते हैं। फल एवं सब्जियों को 10–60 मिनट तक पानी में भिगोने से 15–60 प्रतिशत रासायनिक अवशेष स्तर घट जाता है।
- **छीलना:** सभी फल एवं सब्जियों को छीलकर काम में लेना चाहिए जिससे रासायनिक दवाओं युक्त बाहरी चमड़ी निकल जाए व पदार्थ सुरक्षित हो जाए। कुछ सब्जियाँ जैसे पत्तागोभी, फूलगोभी व अन्य पत्तेदार सब्जियों के ऊपरी चार–पाँच पत्ते हटा देना चाहिए तथा उसके बाद सब्जियों को काम में लेना चाहिए। छिलके वाले फल जैसे केला, संतरा, मौसमी, पपीता, चीकू अधिक सुरक्षित है क्योंकि इन्हें छिलका उतारकर इस्तेमाल करते हैं तथा सेब, अमरूद, बेर, आलू बुखारा जैसे फलों में अवशेष स्तर अधिक पाया जाता है क्योंकि हम इनका छिलका नहीं उतारते हैं।
- **उबालना/ब्लांचिग द्वारा:** फल एवं सब्जियों को उनकी प्रकृति के अनुसार उबलते पानी में 2–8 मिनट डुबोकर रखें व पानी को फेंक दें। इससे दवाओं का अवशेष स्तर 30 प्रतिशत तक घट जाता है। इस प्रक्रिया से मटर, पालक, हरी बींस, मेथी, फूलगोभी, आदि सब्जियों को सुरक्षित कर सकते हैं।
- **भाप द्वारा:** भोजन को यदि भांप द्वारा प्रेशर कूकर में बनाया जाए तो काफी रसायन अधिक तापमान पर टूट जाने से बेअसर हो जाते हैं तथा उनका दुष्प्रभाव खत्म हो जाता है।
- **नमक के घोल में उबालें:** फल एवं सब्जियों को नमक के घोल (6 ग्राम नमक प्रति किलो जल के अनुपात से) में उबालने से भी रासायनिक दवाओं का असर कम हो जाता है। तथा 10 मिनट उबलने के बाद पानी को फेंक दें। उदाहरण के लिए–टमाटर, मटर, फूलगोभी इत्यादि।

- **पकाना/तलना/भूनना:** कच्चे फल एवं सब्जियों का सेवन बनस्पत यदि पकाकर, तलकर या भूनकर किया जाए तो इन प्रक्रियाओं द्वारा बहुत सारे रसायन टूट कर नष्ट हो जाते हैं और इन्हें सेवन के लिए सुरक्षित बना देते हैं।
- **हिमीकरण तथा डिब्बाबंदी द्वारा:** भोज्य पदार्थों जैसे सब्जियाँ मटर, गाजर इत्यादि को ब्लांच करके, 18°C से –40°C तापक्रम पर रखने से कई दवाओं के अवशेष टूट जाते हैं। साथ ही वायु निकाल कर पैक कर देने से सब्जियाँ काफी हद तक सुरक्षित हो जाती हैं।
- विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए जिससे एक प्रकार के इस्तेमाल किए गए रसायनों के दुष्प्रभाव से बचा जा सके।
- अनाज के साथ रसायनों द्वारा कम प्रभावित भोज्य पदार्थों का सेवन अधिक करना चाहिए जैसे दालें, अंकुरित दालें, उबला दूध, जड़ वाली सब्जियाँ–आलू, गाजर, मूली, मौसमी मोटे छिलके वाले फल इत्यादि।

पूर्व में बताई गई बीमारियों से बचने के लिए पर्याप्त मात्रा में दूध, दही, लस्सी व विषरहित फल सब्जियों का भरपूर सेवन करना चाहिए।

2.3 भोज्य पदार्थों के सेवन पश्चात रसायनों के दुष्प्रभाव को कम करना

- नींबू पानी का उपयोग करना– नींबू में मौजूद साइट्रिक अम्ल रासायनिक अवशेष स्तर को कम करता है।
- छाछ / लस्सी का अधिक से अधिक प्रयोग।
- व्रत रखने से भी शरीर में पैदा होने वाले विष शरीर से निष्कासित हो जाते हैं।
- औषधीय चूर्ण एवं पाचक पदार्थों का उपयोग करने से (जैसे त्रिफला, सीतोपलादी, द्राक्षावलेह, च्यवनप्राश, आंवला पाचक, लवण भास्कर आदि) रसायनों के अवशेष स्तर कम हो जाते हैं।

अंत में यही निष्कर्ष निकलता है कि रसायनों के दुष्प्रभाव से हमें भोज्य पदार्थों जैसे फल, सब्जियों का सेवन कम करने की बजाय कुछ सावधानियाँ रखकर उन्हें सुरक्षित रूप में अधिकाधिक लेना चाहिए।

4

खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में मददगार: गैर परम्परागत फसलें

दशरथ भाटी[1]

1. प्रस्तावना
2. गैर-परम्परागत फसलों के गुण
3. गैर परम्परागत फसलों का पोषकीय महत्व

1. प्रस्तावना

भारत में कुपोषण की स्थिति चिंताजनक है, क्योकि संसार में कुपोषण से ग्रस्त 40 प्रतिशत बच्चे हमारे देश में है। विश्व में कम वजन के साथ पैदा होने वाले बच्चों का एक तिहाई भाग भारत में है। लगभग 56 प्रतिशत गर्भवती महिलाए खून की कमी से प्रभावित हैं। कुपोषण से अधिकांशतः गरीब लोग प्रभावित होते हैं। शुष्क रेगिस्तानी, पहाडी, एवं आदिवासी क्षेत्रों मे गरीबों की संख्या अधिक पाई जाती है। अतः इन क्षेत्रों में कुपोषण की समस्या अधिक गंभीर है। सम्पूर्ण देश में अनाज एवं चीनी उपलब्ध कराने हेतु राशन व्यवस्था है, परन्तु गरीब लोगों के लिए धन के अभाव के कारण राशन प्राप्त करना आसान नहीं होता। अतः उपलब्धता के साथ–साथ सम्पूर्ण आहार प्राप्त करने की क्षमता भी होनी चाहिए। भोजन सभी पोषक तत्वों जैसे काबोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवणों, विटामिन आदि से पूर्ण होना चाहिए। किन्तु राशन में मिलने वाले खाद्य पदार्थों में इन सभी की कमी होती है। कुपोषण विटामिन एवं खनिज लवणों की कमी से अधिक होता है। इस तरह कुपोषण को कभी–कभी Hidden hunger भी कहते हैं। आहार में फल व सब्जियों को सम्मिलित करके ही कुपोषण को दूर किया जा सकता है।

2. गैर-परम्परागत फसलों के गुण

यदपि गैर–परम्परागत फलों की लोकप्रियता फल तथा स्थान पर निर्भर है। किन्तु पकने के समय सभी लोग इनको खाना पसंद करते हैं। गत कुछ दशकों में इनकी लोकप्रियता में काफी वृद्धि हुई है।

- **आसान उपलब्धता:** परम्परागत फलों की खेती की तकनीक का अधिक विकास हो जाने के कारण उनको उगाने में काफी लागत लगती है (Inputs)। वानस्पतिक प्रजनन, मूलंवृत्त, टपक सिंचाई, एकीकृत कीट व्याधि–नियंत्रण एवं आधुनिक विपणन व्यवस्था को उपयोग में लाकर ही इनकी खेती में सफलता प्राप्त की जा सकती है। जबकि गैर परम्परागत फसलों की खेती अभी भी सामान्य पद्धतियों से ही की जा सकती है। गैर परम्परागत फलों की खेती जलवायु एवं भूमि संबंधी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी फलोत्पादन की क्षमता रखते हैं। इनमें से अधिकतर फल शुष्क जलवायु एवं कम पानी में भी उग जाते हैं। जैसे की बैर, आंवला इत्यादि।

[1]सह–आचार्या, खाद्य विज्ञान व तकनीकी विभाग, करियर प्वाइंट यूनिवर्सिटी, कोटा, राजस्थान। ई–मेल: bhati.dashrath.1@gmail.com

- **पोष्टिक तत्वों की प्रचुरता:** समय–समय पर किये गये विभिन्न अध्ययनों में यह पाया गया है कि गैर परम्परागत फसलों मे सभी पौष्टिक तत्वों की प्रचुरता होती है। कुछ गैर परम्परागत फल व सब्जियाँ तो ऐसी हैं जिनकी पोषक क्षमता परम्परागत फसलों की तुलना में अत्यधिक है।
- **औषधीय गुण:** गैर परम्परागत फसलों में पौष्टिक तत्वों के साथ ही औषधीय गुण भी देखे गये हैं। जैसे कि जामुन मधुमेह के रोगियों के लिए लाभदायक है।
- **बहु-उपयोगिता:** गैर परम्परागत फसलों का प्रयोग विभिन्न प्रकार से किया जाता है। स्थानीय लोग इन फसलों को बेचकर अपनी आजीविका चलाते हैं।

गैर परम्परागत भोज्य पदार्थ स्थानीय लोगों के आस–पास की जलवायु में ही उगी होती है इसके फलस्वरूप फसलें उपयोग के लिए आसानी से उपलब्ध होती हैं। इन्हें खरीदने के लिए दूर के बाजारों में भी नहीं जाना पड़ता है। इन्हें अपनी जरूरत के अनुरूप तुरन्त तोड़कर खाने में प्रयोग किया जाता है।

3. गैर परम्परागत फसलों का पौषकीय महत्व

गैर परम्परागत फसलों में भी वह सभी पोषक तत्व पाये जाते हैं जो कि हमारे शरीर के विकास तथा वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं। विभिन्न अध्ययनों में यह भी पाया गया है कि गैर–परम्परागत फसलों में विटामिन तथा खनिज लवण परम्परागत फसलों में विटामिन तथा खनिज लवण की तुलना में अधिक होती है। भारत जैव विविधता में सम्पन्न देश होने के कारण यहां विभिन्न गैर–परम्परगत फसलों की संख्या बहुत अधिक है। किन्तु इन सभी फसलों की पोषकीय महत्व ज्ञात नहीं है। कुछ महत्वपूर्ण फसलों में उपस्थित पोषक तत्वों का विवरण तालिका में दिया गया है।

कुछ महत्वपूर्ण गैर-परम्परागत फल

लुनकिया की सब्जी को यदि भोजन में लिया जाए तो यह किडनी की पथरी की रोकथाम में सहायक होता है।

- **विटामिन:** हमारे शरीर को स्वस्थ रहने के लिए विटामिन की आवश्यकता होती है। क्योंकि इनकी आवश्यकता शरीर में कम मात्रा में होती है। घुलनशीलता के आधार पर इन्हें दो भागों में विभाजित किया गया है। जैसे कि विटामिन ए, डी, ई, के वसा में घुलनशील है। वहीं विटामिन सी एवं बी काम्पलेक्स समूह पानी/जल में घुलनशील होते हैं। ये दोनों ही समूह के विटामिन भोजन में अति आवश्यक होते हैं। विटामिन हमारे पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मेटाबॉलिज्म–चयापचय में इनका बड़ा योगदान होता है। शरीर वृद्धि और विकास में यह तत्व बड़े सहायक सिद्ध होते हैं। विटामिन शरीर के विभिन्न रोगों से सुरक्षा प्रदान करते हैं तथा विभिन्न क्रियाओं को नियमित एवं नियंत्रित करते हैं। अस्थि, त्वचा, बाल, आँखों, आदि अंगों के उत्तम स्वास्थय के लिए विटामिन आवश्यक होते हैं। गैर परम्परागत फसलें इन विटामिन से परिपूर्ण होती हैं। जैसे कि आँवला में विटामिन सी प्रचुर मात्रा में होता है। यदि प्रतिदिन आँवले या आँवले से बने पदार्थ का आहार में प्रयोग किया जाय तो विटामिन–सी की कमी से बचा जा सकता है।
- **खनिज लवण:** हमारे शरीर के कुल भार का 96 प्रतिशत भाग पानी, कार्बोज, वसा एवं प्रोटीन से मिलकर बना होता है। शेष 4 प्रतिशत भाग खनिज लवणों से बना होता है। इस प्रकार अगर उपस्थिति के आधार पर

कुछ गैर परम्परागत फसलों की पोषक क्षमता (50 ग्राम खाने योग्य हिस्सा)

फसलें	नमी (%)	ऊर्जा (कि.कैलोरी)	कार्बोहाइड्रेट	रेशा	वसा	प्रोटीन
बेल	61.5	68	15.9	1.5	0.15	0.9
सीताफल	70.5	52	11.8	1.6	0.2	0.8
बांस	56.3	76	17.1	2	0.05	2
तेन्दू	70.6	56	13.4	0.4	0.1	0.4
आंवला	81.8	29	6.8	1.7	0.05	0.3
कोटम्बडी / कोटबडी	64.2	67	9.1	2.5	1.85	3.6
खिरनी / रायन	68.6	67	13.9	1.5	1.2	0.3
सहजन	86.9	13	1.8	2.4	0.05	1.3
खजूर	59.2	72	16.9	1.9	0.2	0.6
इमली	20.9	142	34	2.8	0.05	1.6
लुनकिया	90.94	12.76	1.97	0.34	0.16	0.86
डांडी चन्दलोई	90.09	13	1.0	0.5	0.35	1.5
बधुआ	89.6	15	1.45	0.4	0.2	1.65
लीलवा	77.09	37.585	4.96	1.26	0.46	3.41
कनेजडा	84.5	30.5	3.6	–	0.45	3.05
पुआरिया	84.92	25.91	3.29	0.72	0.43	2.215
रजका	72.61	42.09	6.44	1.99	0.34	3.31
सिन्दुरी	89.52	21.18	3.10	0.49	0.7	0.63
कमरख	76.9.	38.86	7.86	1.41	0.25	1.23
सन	91.54	14.01	1.87	0.49	0.22	1.15
केरोंदा	93.5	9.0	1.55	0.80	0.05	0.6

देखा जाए तो खनिज लवणों की अल्प मात्रा ही शरीर में विद्यमान रहती है। परन्तु अल्प मात्रा में होते हुए भी इनकी महत्ता शरीर निर्माण तथा (वृद्धि एवं विकास) सुरक्षा की दृष्टि से अमूल्य है। गैर परम्परागत फसलों मे खनिज लवणों की अधिकता होती है।

- **प्रोटीनः** शरीर में विभिन्न क्रियाकलापों के दौरान विभिन्न कोशिकाओं एवं तन्तुओं की निरन्तर टूट–फूट होती रहती है। जिसकी मरम्मत प्रोटीन करता है। शरीर के वृद्धि एवं विकास के लिए प्रोटीन नितान्त आवश्यक है। यह शरीर में उपस्थित सभी तत्वों में से एक महत्वपूर्ण तत्व है। मात्रा की दृष्टि से यदि अवलोकन किया जाए तो पता चलता है कि जल के पश्चात् प्रोटीन का ही स्थान आता है। संरचना की दृष्टि से देखा जाए तो प्रोटीन क्रियाशील ऊतकों के निर्माण में मुख्य घटक है। इसी कारण यह शरीर के प्रत्येक अंग–प्रत्यंग को बनाने, उनकी वृद्धि करने, परिपक्व करने, सुडौल व सुगठित और क्षतिग्रस्त कोशिकाओं का पुनरावर्तन करने में सक्षम होते हैं अतः यह हमारे आहार का मुख्य अंग होते हैं। इसी कारण यह अति आवश्यक होता है कि हमारे आहार मे पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन संलग्न किये जाएं। गैर परम्परागत फसलों मे प्रचुर मात्रा में प्रोटीन उपलब्ध होते हैं।

- **कार्बोहाईड्रेटस:** यह हमारे भोजन का मुख्य भाग है। एक साधारण व्यक्ति को 55 प्रतिशत से 65 प्रतिशत तक ऊर्जा कार्बोहाइड्रेट से ही मिलती है। शरीर की विभिन्न गतिविधियों का संचालन तथा दैनिक क्रियाकलापों को सम्पन्न करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता पडती है। ये ऊर्जा अधिकाशः कार्बोहाईड्रेट से प्राप्त की जाती है। कार्बोहाईड्रेटस की प्राप्ति के मुख्य स्त्रोत वनस्पति जगत है। पेड–पौधे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा कार्बोहाईड्रेटस का निर्माण करते है। प्रकाश संश्लेषण की क्रिया हरी पत्तियों के द्वारा होती है। हरी पत्तियों में उपस्थित क्लोरोफिल, पौधें में उपस्थित जल तथा वातावरण से कार्बन–डाईऑक्साइड लेकर सूर्य प्रकाश की उपस्थिति में कार्बोहाईड्रेटस का निर्माण होता है। यह कार्बोहाईड्रेटस पेड–पौधे अपनी जडों, तने, फल, फूल, बीजों आदि में संग्रहित करते हैं। इन्हीं को हम अपने आहार में प्रयोग करते हैं।
- **वसा:** साधारणतया सभी भोजन पदार्थों में वसा, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उपस्थित होती है। जैसे की घी, तेल प्रत्यक्ष वसा का उदाहरण है। वहीं अनाज, फलों, सब्जियों आदि में पाये जाने वाली वसा अप्रत्यक्ष वसा की श्रेणी में आता है। केरोंदे में अन्य फलों व सब्जियां के मुकाबले अधिक अप्रत्यक्ष वसा उपस्थित होती है। गैर परम्परागत फसलें स्थानीय लोगों के लिए एक सस्ता तथा आसानी से उपलब्ध भोज्य पदार्थ है। यह अति आवश्यक है कि इन फलों व सब्जियों का अधिक से अधिक प्रयोग आहार में किया जाये।

5 ग्रामीण क्षेत्रों के लिए कृषि आधारित उद्यमिता विकास

सोमा श्रीवास्तव[1], अनुराग सक्सेना, रंजय कुमार सिंह एवं भगवान सिंह

1. प्रस्तावना
2. ग्रामीण विकास में लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्व
3. निर्जलन/शुष्कन उद्योग
4. फल तथा सब्जी परिरक्षण व प्रसंस्करण
5. पौधशाला में पौधे (नर्सरी) तैयार करने की तकनीक
6. मधुमक्खी पालन
7. केंचुआ खाद/वर्मी कम्पोस्ट बनाना
8. मशरूम उत्पादन

1. प्रस्तावना

महात्मा गाँधी ने कहा कि भारत गाँवों में रहता है। अतः जब तक गाँवों का विकास नहीं किया जायेगा तब तक भारतवर्ष की उन्नति कैसे संभव है। भारत में जब ग्रामीण विकास की चर्चा होती है तो उसका अर्थ सिर्फ खेत–खलिहान और सिंचाई आदि से नहीं लिया जा सकता और न ही प्राथमिक विद्यालयों, स्वास्थ्य केंद्रों का वर्णन कर देने से ग्राम्य विकास की तस्वीर उभरती है। भारत कृषि प्रधान देश अवश्य है, पर यहाँ खेत जितने छोटे हैं उपज जितनी कम है और खेती पर निर्भरता जितनी अधिक है उसे देखते हुए केवल खेती पर आश्रित होने पर न व्यक्ति का पेट भर सकता है और न ही परिवार का पालन पोषण हो सकता है तथा न ही गाँवों का उत्थान हो सकता है। ग्रामीण अंचल में अगर जनता का जीवन स्तर उठाना है समृद्धि एवं खुशहाली लानी है तथा विकास व रोजगार के साधन बढ़ाने हैं तो गाँवों में लघु कुटीर एवं खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों को बढ़ावा देना होगा। लघु एवं कुटीर उद्योग ग्रामीण विकास की धुरी है। ग्रामीण विकास में इनका वही महत्व है जो पूरे देश के औद्योगिक विकास में बड़े उद्योगों का है।

2. ग्रामीण विकास में लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्व

ग्रामीण जीवन की परिस्थितियाँ और आवश्यकताएं ऐसी होती हैं कि वहाँ सामान्यतया बड़े और मध्यम दर्जे के उद्योगों के लिए उपयुक्त सुविधाएं नहीं होती हैं। ग्रामीण अंचल में ऐसे उद्योग ही विकसित हो सकते हैं जो शहरी सुविधाओं से दूर बसे गाँवों की आर्थिक जरूरतों को पूरा कर सकें। एक और कारण है जिससे गाँवों में लघु व कुटीर उद्योगों की महत्ता बढ़ जाती है। किसान का जीवन केवल कृषि आधारित होता है। किन्तु कृषि से उतना काम नहीं मिलता कि वह अपना सारा समय बस कृषि में ही लगाये रखे न ही इतने आर्थिक साधन होते हैं कि वह बड़े उन्नत तरीके से कृषि कार्य कर सकें। सिंचाई की अनेक सुविधाओं के बाद भी किसानों की उपज आज भी वर्षा पर अधिक निर्भर रहती है। ऐसी स्थिति में किसानों के पास खेती के अतिरिक्त आमदनी के स्रोत नहीं होते हैं। राजस्थान राज्य में जहाँ कृषि परिस्थितियाँ विषम हैं उद्यमिता विकास आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। लघु और कुटीर उद्योग, ग्रामीण परिवारों की आय का अतिरिक्त साधन बनने के साथ ही, रोजगार के स्रोत भी बनते हैं। जोत की सीमा कम होते जाने से अधिकांश परिवारों के लिए खेती से इतनी आमदनी नहीं हो पाती कि उससे बढ़ते परिवार की आवश्यकताएं पूरी की जा सकें इसलिए, खेतिहर मजदूरों की संख्या और उनका गांवों से शहरों की ओर पलायन भी बढ़ता जा रहा है। इससे एक ओर गांवो में गरीबी फैलती है, पारिवारिक संतुलन बिगड़ते हैं, वहीं दूसरी ओर शहरों में काम की तलाश में जाने वाले ग्रामीण शहरों के क्लिष्ट जीवन से कुंठाग्रस्त होकर वहां की समस्याओं में वृद्धि करते हैं। वे गांव की अपनी जड़ों से कट जाते हैं, लेकिन शहरी

[1]वैज्ञानिक, केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)। ई–मेलः soma.sriv8@gmail.com; Mobile: 96946-40172

जीवन में भी आत्मसात नहीं हो पाते। इससे गांव और शहर, दोनों जगह असंतुलन और असंतोष बढ़ता है इस स्थिति में सुधार का एक ही उपाय है कि ग्रामीण क्षेत्रों में लघु व कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देकर ग्रामीण विकास में उनके योगदान में वृद्धि की जाए। यह सच है कि देश में बड़े उद्योगों का व विस्तार और विकास दिखाई अधिक देता है लेकिन उसका एक बड़ा कारण इन बडे उद्योगों के बारे में किया जा रहा प्रचार भी है जबकि लघु उद्योगों, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित इकाइयों, के बारे में उतना प्रचार नहीं होता। इन ग्रामीण उद्योगों का कार्यक्षेत्र और प्रभाव क्षेत्र सीमित होने के कारण उन्हें संभवतः उतने व्यापक प्रचार की आवश्यकता भी नहीं होती। फिर भी आंकड़े इस बात के साक्षी हैं कि देश में कुल मिलाकर हो रहे औद्यौगिक विकास में लघु और ग्रामीण उद्योगों का योगदान निरंतर बढ़ता जा रहा है। देश में कुल औद्योगिक माल के निर्माण, उसकी बिक्री और निर्यात तीनों क्षेत्रों में लघु उद्योगों का महत्व प्रतिवर्ष बढ़ता जा रहा है। लघु उद्योग क्षेत्र कुल औद्योगिक उत्पादन में लगभग 40 प्रतिशत और कुल निर्यात में करीब 35 प्रतिशत का योगदान कर रहे हैं। देश की व्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योग केवल गाँव आधारित हैं बल्कि इनके माध्यम से देश के ग्रामीण तथा सुदूर क्षेत्रों में उद्यामिता विकास हुआ है। इस सेक्टर में जिसमें लघु उद्योग, हथकरघा, हस्तशिल्प कुटीर, ग्रामीण उद्योग शामिल हैं। होटल, पर्यटन, फिल्म खनिज विकास पोल्ट्री को विशेष उद्योग का दर्जा दे दिया गया है तथा निर्यात और कृषि आधारित उद्योगों को वरीयता पर प्रोत्साहित किया जा रहा है।

3. निर्जलन/शुष्कन उद्योग

भारत का फल–सब्जी उत्पादन में विश्व में दूसरा स्थान है। चीन के पश्चात् भारत का फल एवं सब्जी उत्पादन में दूसरा स्थान होना अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत में विश्व का 8 प्रतिशत फल उत्पादन एवं 15 प्रतिशत सब्जी उत्पादन होता है परंतु पर्याप्त प्रबंधन एवं प्रसंस्करण के अभाव में 20–30 प्रतिशत नष्ट हो जाता है इसका कारण समुचित फसल भंडारण की कमी, प्रसंस्करण सुविधाओं का अभाव आवश्यकतानुरूप फसल उपरांत प्रोद्योगिकी का उपयोग न होना तथा फसल उपरांत प्रौद्योगिकी का समुचित प्रचार–प्रसार न होना और प्रशिक्षित जन शक्ति की कमी है। यदि हम राजस्थान की बात करें तो यहाँ पानी की कमी के कारण व अन्य वातावरणीय परिस्थितियों की वजह से फल व सब्जियों का उत्पादन कम ही हो पाता है। निर्जलन फलों तथा सब्जियों के परिरक्षण के लिए ज्ञात सबसे पुराने एवं महत्वपूर्ण तरीकों में से एक है। ज्यादातर फलों एवं सब्जियों में 80–95 प्रतिशत के मध्य जल होता है। सुखाने का प्रमुख लक्ष्य फलों तथा सब्जियों से उस सीमा तक मुक्त जल को हटाना है जहां सूक्ष्म जीव बचते नहीं हैं तथा उनका पुनः प्रजनन नहीं होता है, साथ ही साथ कुल ठोस पदार्थ अर्थात् चीनी तथा जैव अम्ल संकेद्रित हो जाते हैं। इस तरह सुखाने के फलस्वरूप इसकी भार एवं मात्रा कम हो जाती है एवं इस प्रकार बढ़ी हुई अनुरक्षण गुणवत्ता, बढ़े हुए स्थानीय मूल्य संयोजन एवं ग्रामीण जनसंख्या विशेषकर महिलाओं को रोजगार के अवसर मिलते हैं, अतिरिक्त परिवहन पर बचत होती है एवं परिवहन के दौरान क्षति कम होती है, बाजार खतरा कम होता है, नकद आय प्राप्त होती है तथा ग्रामीण विकास में योगदान होता है। लगभग सभी फलों तथा सब्जियों को सुखाया जा सकता है। निर्जलित उत्पाद पकने पर पुनः संपोषित हो जाते हैं। इसलिए सभी निर्जलित उत्पादों का उपयोग स्वाद तथा खुशबू में किसी परिवर्तन के बिना सब्जी तथा कढ़ी निर्माण में किया जा सकता है। यांत्रिकीय उपस्कर में तैयार किए गए फल अथवा सब्जी को निर्जलक कक्ष के भीतर लगी ट्रे में रख दिया जाता है जिसमें तापमान, वायु की नमी एवं दर को नियंत्रित किया जा सकता है। यांत्रिकीय निर्जलन कहीं भी किया जा सकता है। यह धूप शुष्कन से काफी तेज होता है। उत्पाद बेहतर गुणवत्ता के होते हैं क्योंकि इसे नियंत्रित तापमान एवं आर्द्रता में सुखाया जाता है। मौसम पर निर्भर नहीं होता है। निर्जलित उत्पाद पकने पर पुनः संघटित हो जाते हैं। सभी निर्जलित उत्पादों का उपयोग स्वाद एवं खुशबु बिना किसी परिवर्तन के सब्जियों तथा कढ़ी को तैयार करने में किया जा सकता है। निर्जलन के फलस्वरूप फल तथा सब्जियां हर मौसम में उपलब्ध रहती हैं तथा लोगों की पोषकीय स्थिति को सुधारने में मदद मिलती है। निर्जलित उत्पादों का भण्डारण एवं उपयोग हर मौसम में भी किया जा सकता है।

समुदाय द्वारा उगाए गए स्थानीय फलों तथा सब्जियों की उपयोगिता को समझने के लिए आवश्यकता

मूल्यांकन सर्वेक्षण किए जाने चाहिए। बाजार में बेची गई सब्जियों एवं फलों की मात्रा तथा बेकार हुई तथा स्वउपयोग की मात्रा के बारे में सूचना मांगी जानी चाहिए। आवश्यकता मूल्यांकन सर्वेक्षण में समुदाय द्वारा उपयोग में लाई गई वर्तमान तकनीकों की समझ आवश्यक है। फलों तथा सब्जियों की बर्बादी को रोकने के लिए सर्वेक्षण में निर्जलित उत्पादों के लिए संभावित बाजारों एवं उपभोक्ताओं को भी समझने का प्रयास किया जाना चाहिए। आवश्यकता सर्वेक्षण में समुदाय में उपलब्ध स्थानीय संसाधनों की भी जानकारी जैसे स्वच्छ जल, सर्वेक्षण के जरिए कच्ची सामग्री अधि–प्राप्ति/यूनिटों (संभावित किसानों का पता चलाना) जो निर्जलन के लिए फल तथा सब्जियां प्रदान करेंगे आदि जो प्रसंस्करण केंद्र के लिए आवश्यक हैं के बारे में सूचना मांगी जानी चाहिए। निर्जलित उत्पादों के विपणन के लिए संभावित बाजारों, विशेषकर ग्रामीण बाजारों का निर्धारण किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, निर्जलित फलों तथा सब्जियों के विपणन के लिए संभावित क्रेताओं, सरकारी विभागों, संस्थाओं तथा निजी संस्थाओं से सम्पर्क भी स्थापित किया जाना चाहिए। परियोजना प्रस्तावों को प्रस्तुत करते समय निर्जलित फलों तथा सब्जियों के विपणन के लिए नीति के बारे में सूचना मांगी जानी चाहिए तथा भावी विपणन सुनिश्चित होना चाहिए। उत्पादों के व्यापक विपणन के लिए अपेक्षित एफ.पी.ओ. प्रमाणन प्राप्त होना सुनिश्चित होना चाहिए।

4. फल तथा सब्जी परिरक्षण व प्रसंस्करण

शुष्क क्षेत्र के रहवासियों ने सदियों पहले से अपने भोजन को संपूर्ण एवं सुरूचिपूर्ण बनाने के लिये विभिन्न प्रकार के मूल्य संवर्धन तकनीकियाँ विकसित कर ली थी जिनका उद्देश्य फसल के तैयार होने से पहले व अकाल पड़ने की स्थिति से पहले भोजन को संरक्षित करना था। इससे पता चलता है कि हमारे पूर्वज भी मूल्य संवर्धन के महत्व को समझते थे व इसे अपनाते थे। फल व सब्जियों का उत्पादन मौसम के अनुसार होता है। यदि इन्हें समय पर परिरक्षित कर लिया जाये तो इनका न केवल घरेलू स्तर पर उपयोग कर सकते हैं, बल्कि इनका विपणन कर अधिक आय भी प्राप्त कर सकते है। फल व सब्जियों के मूल्य संवर्धित उत्पाद भी आय प्राप्त करने का अच्छा साधन है। जैसे जैली, स्क्वैश, लाइम ज्यूस, कार्डियल, मुरब्बा, कैण्डी, सिरका, अचार, पापड़ आदि। इन्हे बनाने की तकनीकी सरल होने के साथ–साथ अधिक पूंजी निवेश के बिना भी स्थापित की जा सकती है तथा अच्छी आय भी प्राप्त की जा सकती है। संरक्षण के द्वारा फलों तथा सब्जियों के गुणवत्ता में सुधार करने में मदद मिलती है। संरक्षण के प्रमुख कारणों में एक कारण है कि अतिरिक्त उत्पाद को बाद में उपयोग के लिए भण्डारित किया जा सकता है। संरक्षण से भोजन की विविधता में वृद्धि होती है तथा इससे उन क्षेत्रों में खाद्य मदें उपलब्ध होती हैं जहां उन्हें उगाया नहीं जाता है।

संरक्षण से खाद्यों का परिवहन एवं भण्डारण आसान हो जाता है। फलों एवं सब्जियों के संरक्षण से ग्रामीण महिलाओं एवं युवाओं के लिए रोजगार पैदा होता है। फलों तथा सब्जियों की गुणवत्ता के रख रखाव में वृद्वि के लिए खाद्य परिरक्षण के विभिन्न तरीकों का इस्तेमाल किया जा रहा है। लवण तथा शर्करा, डिब्बाबंदी में वृद्वि करके प्रशीतन, हिमीकरण, पास्च्युरीकरण, निष्कीटन, निर्जलन, परिरक्षण कुछ तरीके हैं जिन्हें फलों तथा सब्जियों के परिरक्षण के लिए इस्तेमाल में लाया जाता है। लवण तथा शर्करा के द्वारा फल तथा सब्जी परिरक्षण के किए कौशल व तकनीक की जानकारी होना अत्यंत आवश्यक है। इसके अंतर्गत फल एवं सब्जियों को खराब न होने देने तथा उनसे विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ तैयार करने की विधियों का अध्ययन किया जाता है फल सब्जियों का परिरक्षण एक निश्चित वातावरण में विशिष्ट तकनीकी क्रियाओं द्वारा किया जाता है फलों एवं सब्जियाँ क्यों खराब होते हैं व इन्हें खराब होने से कैसे बचाया जाए, किन–किन विधियों द्वारा विभिन्न फल सब्जियों को संरक्षित किया जा सकता है व उनके कौन से उत्पाद बन सकते हैं इसकी जानकारी के लिए फल परिरक्षण की व्यवहारिक जानकारी बहुत आवश्यक है। फल एवं सब्जियों का शीतलन, हिमीकरन, कैनिंग, बोतलबंद उत्पादों का निर्माण, जूस, मार्म्लेड, स्कवैश, आदि का निर्माण इसके अंतर्गत आता है। परियोजना का आकार तथा परिव्यय, बाजार के आकार, प्रौद्योगिकी के प्रकार तथा आटोमेशन की डिग्री (हिस्सा) पर निर्भर करता है। उद्यमी परियोजना क्षेत्र में कच्चे माल की उपलब्धता एवं बाजार की मांग के आधार पर उत्पाद के प्रकार के बारे में निर्णय ले सकते हैं। नए उद्यमी एक व्यक्ति के रुप में अकेले मालिकाना संगठन, पार्टनरशिप फर्म अथवा ज्वाइंट स्टाक कंपनी के तोर पर अपना कारोबार शुरु कर सकते हैं। अकेले और मालिकाना संगठन का अपना पैन (PAN) नंबर होना चाहिए तथा बैंक खाता भी होना चाहिए। पार्टनरशिप फर्मों को राज्य सरकार के स्टांप एक्ट के अनुसार नान ज्यूडिशियल स्टांप पेपर पर इंडियन पार्टनरशिप एक्ट 1932 के अनुसार भागीदारी विलेख निष्पादित करना चाहिए तथा पार्टनरशिप फर्म को कारपोरेट कार्य मंत्रालय में पंजीकृत कराना चाहिए। ज्वाइंट स्टाक कंपनी, दि. कंपनी एक्ट 2013 के अनुसार प्राइवेट लिमिटेड, पब्लिक लिमिटेड अथवा प्रोडयूसर्स कंपनी के तौर पर गठित की जा सकती है जिसका ब्यौरा लिंक के रुप में मंत्रालय की वेबसाइट पर दिया गया है। प्रसंस्कृत उत्पादों के लिए (प्रोसेस्ड प्रोडक्टस) फूड सेफ्टी एंड स्टैंडर्ड अथॉरिटी ऑफ इंडिया (FSSAI) एक्ट 2006 का पालन किया जाना चाहिए। भारत में सभी खाद्य उत्पादों के लिए एफ.एस.एस.ए.आई. एक्ट लागू होता है। यह न्यूनतम मानदंडों, परिचात्मन प्रक्रिया, खाद्य सुरक्षा मानदंडों, पैकेजिंग तथा लेबलिंग मानदंडों के बारे में विनिर्देश निर्धारित करता है। कई इकाइयों को फूड सेफ्टी एंड स्टैंडडैर्स अथॉरिटी ऑफ इंडिया से एक लाइसेंस लेना पडता है जिसे एफ.एस.एस.ए.आई. नंबर कहते हैं। लाइसेंसिंग की प्रक्रिया एफ.एस.एस.ए.

आई. के वेबसाइट पर दी गई है। फल और सब्जी का विपणन बहुत बड़ी चुनौती होता है। बाजार में पहले से कई लोकप्रिय ब्रांड मौजूद हैं जो नये खाद्य उत्पाद (न्यू फूड प्रोडक्टस) की राह में बडी रूकावट का काम करते हैं। भारतीय बाजार आयातित उत्पादों से भरा पडा है। अतः नए लोगों को अपने उत्पादों के विपणन को अत्यधिक महत्व देना पडता है। खाद्य उत्पाद की ब्रैडिंग एवं मार्केटिंग के लिए किसी प्रोफेशनल एजेंसी की सेवाएं लेना बेहतर रहता है। इकाइयों को अपने प्रोडक्टस के विज्ञापन और प्रमोशन के लिए भी पर्याप्त बजट का आवंटन करना चाहिए।

5. पौधशाला में पौधे (नर्सरी) तैयार करने की तकनीक

भारत में बागवानी और बागानों का क्षेत्र व्यापक और बहुमुखी है. इनमें, फल, सब्जियाँ, आलू, कन्द, सजावटी, पौधें, औषधीय एवं सुगन्धित पौधे, मसाले, बागानी, फसलें, कुकुरमुत्ता आदि हैं। शीतोष्ण, फल, सब्जियाँ, फूल ओर मसाले उत्तरी हिमालय क्षेत्र में उगाये जाते हैं जबकि शेष भारत में उपोष्ण) और उष्णकटिबन्धी फल, सब्जियाँ, सजावटी पौंधे कुकुरमुत्ता, मसालें की खेती की जाती है। परंपरागत फल फसलों के अंतर्गत उष्णकटिबन्धी (tropical) और उपोष्ण फल जैसे आम, केला, अनार, अनन्नास, अंगूर, नीम्बू–प्रजाति के फल आदि आते हैं। इनकी खेती से सिंचित और वर्षाधीन स्थितियों दोनों में छोटे भू–जोत को टिकाऊ आजीविका उपलब्ध कराने की काफी संभावनाएं है। फिर भी, विभिन्न राज्यों में इन फसलों के लिए कृषि क्षेत्र बढाने के संबंध में कई समस्याएं है। इनमें बारहमासी बागवानी वाली फसलों के लिए गुणवत्ता वाली पौध सामग्री का समय पर उपलब्ध न होना, मानकीकरण व प्रमाणीकरण की अनुपलब्धता आदि हैं। हालाँकि कई राज्य सरकारों ने संबंधित विभागों के अंतर्गत पौधशाला लगाने से संबंधित सुविधाओं की स्थापना की है, लेकिन अच्छी गुणवत्तावाली पौध सामग्री की माँग सरकारी पौधशाला में उगने वाले पौधों के मुकाबले बहुत ज्यादा है। अतः व्यावसायिक पौधशाला इकाई की स्थापना के लिए अच्छी संभावनाएं हैं। अच्छी गुणवत्ता–वाली पौध सामग्री के लिए ऊंचे मूल्य प्राप्त होते हैं. अतः वाणिज्यिक पौधशाला में निवेश करना व्यवहारिक और लाभप्रद कार्य है। फलदार तथा वानिकी से संबंधित पौधों की पौधशाला का विकास एक उद्यम के रूप में अपनाया जा सकता है। आमतौर पर एक भूमिगत बेड में (10 x 3 x 1 मीटर) में 1 हजार पौधे तैयार कर सकते हैं। इसके लिये तीन चीजों की आवश्यकता होती है : भूमि, बीज व उपयुक्त वातावरण। थोड़ी सी लागत लगाकर परिश्रम से वैज्ञानिक तकनीकी का प्रयोग कर पौधशाला का निर्माण किया जा सकता है व नर्सरी से पौध बेचकर अच्छी आय कमा सकते हैं। नर्सरी बनाने हेतु 4–5 बार गुड़ाई करके मिट्टी को अच्छी प्रकार से भुरभुरा बना लेना चाहिये और गोबर की खाद आदि उचित मात्रा में मिला दें। इसके पश्चात् बीजों को सब्जी की किस्म के आधार पर निश्चित दूरी में बो देना चाहिए। बीजों को 1.5 सेमी से अधिक गहराई में नहीं बोना चाहिए अन्यथा अंकुरण

होने में समस्या आती है और बीज देर से अंकुरित होते हैं। बीज बोते समय एक मुट्ठीभर डी.ए.पी. एवं बीज उगने के 5–6 दिन बाद यूरिया 2 मुट्ठी भर प्रति 10 वर्ग मीटर में लगाने से पौधों की बढ़वार अच्छी रहती है। बीज को क्यारियों में बोने के बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए। बुवाई के 1–2 हफ्ते में बीज अंकुरित हो जाते हैं और 1 महीने में रोपाई के लिए तैयार हो जाते हैं।

6. मधुमक्खी पालन

मधुमक्खी पालन भी एक आदर्श व्यवसायिक उपक्रम है जिसे किसान अधिक आय के लिये अपना सकते हैं। इसके लिये कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा 1–2 हफ्ते के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। किसी भी आयु के युवक/युवतियों द्वारा इन्हें सीखकर 5000–6000 प्रति माह आसानी से कमाया जा सकता है। मधुमक्खी पालन के लिये अधिक स्थान की भी आवश्यकता नहीं होती व गांव में ही सडक़ के किनारे, खाली पड़ी भूमि, या कृषि योग्य भूमि के चारों ओर भी किया जा सकता है। आदर्श रूप से 1 हैक्टेयर में 5–10 मधुमक्खी कॉलोनी को विकसित किया जाता है। राजस्थान राज्य में इस उद्योग के लिये वृहद संभावनाए हैं। मधुमक्खी पालन को शुरू करने के लिए वसंत ऋतु का चुनाव करना चाहिये, हांलाकि शुष्क क्षेत्रों में अक्टूबर, नवम्बर का समय अधिक अनुकूल होता हैं। क्योंकि इस समय तापक्रम व मधुमक्खी के लिये पराग की उपलब्धता सरसो की फसल के कारण बहुतायत से होती है। इस व्यवसाय के लिए चार तरह की मधुमक्खियां इस्तेमाल होती हैं। ये हैं– एपिस मेलीफेरा, एपिस इंडिका, एपिस डोरसाला और एपिस फ्लोरिया। इस व्यवसाय के लिए एपिस मेलीफेरा मक्खियां ही अधिक शहद उत्पादन करने वाली और स्वभाव की शांत होती हैं। इन्हें डिब्बों में आसानी से पाला जा सकता है। इस प्रजाति की रानी मक्खी में अंडे देने की क्षमता भी अधिक होती है। यह एक ऐसा व्यवसाय है, जिसे यदि किसी फूलवाली फसल के साथ किया जाए तो उसमें 20 से 80 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी हो जाती है। पश्चिमी देशों में बढ़ती मांग को देखते हुए मधुमक्खी पालन की बुआई वाले क्षेत्रों में अच्छी–खासी संभावनाएं हैं। इसके अलावा, सूरजमुखी, गाजर, मिर्च, सोयाबीन, पॉपीलेनटिल्स ग्रैम, फलदार पेड में जैसे नींबू, कीनू, आंवला, पपीता, अमरूद, आम, संतरा, मौसमी, अंगूर, यूकेलिप्टस और गुलमोहर जैसे पेडमें वाले क्षेत्रों में मधुमक्खी पालन आसानी से किया जा सकता है। जहां मधुमक्खियां पाली जाएं, उसके आसपास की जमीन साफ–सुथरी होनी चाहिए। बड़े चींटे, मोमभझी कीड़े, छिपकली, चूहे, गिरगिट तथा भालू मधुमक्खियों के दुश्मन हैं, इनसे बचाव के पूरे इंतजाम होने चाहिए। मधुमक्खी पालन के लिए एक बक्से पर 500 रुपये की लागत आती है। जबकि एक फ्रेम की कीमत 300 से 400 रुपये होती है। एक बक्से में एक सप्ताह में तकरीबन 8 किलोग्राम तक मधु का उत्पादन होता है। जिससे एक लाख से डेढ़ लाख तक की आय सलाना हो सकती है। फूलों का मौसम समाप्त हो जाने के उपरांत बक्शे की मधुमक्खियों को जिंदा रखने के लिए चीनी के चासनी की व्यवस्था करनी पड़ती है। आमतौर पर पचास डिब्बे वाली इकाई पर करीब दो लाख रुपए तक की लागत आती है, जिसमें डिब्बे खरीदने और उपकरणों का खर्च भी शामिल है। इस इकाई पर खर्च करके तीन से चार लाख रुपए कमाए जा सकते हैं। पिछले कुछ वर्षों में मधुमक्खी पालन की ओर लोगों का रुझान बढ़ा है। इस उद्योग के लिए सरकार ने राष्ट्रीयकृत बैंकों से लोन सुविधा उपलब्ध करवाई है। इस व्यवसाय के लिए 2 से 5 लाख रुपए तक का लोन उपलब्ध है, चूंकि यह उद्योग लघु उद्योग श्रेणी के अंतर्गत आता है। प्रशिक्षण संस्थान से जानकारी प्राप्त करना काफी सहायक होता है। इस उद्योग में कई तरह की जानकारी दी जाती हैं। मसलन, शहद उत्पन्न करने के लिए उचित वातावरण, नए–नए उपकरण एवं प्रबंध की जानकारी, उत्पादन के लिए उच्चकोटि की तकनीक, अधिक शहद देने वाली मधुमक्खियों की प्रजातियां, नस्ल सुधार एवं रोगों से बचने की सम्यक जानकारी तथा वैज्ञानिक विधि से मधुमक्खी पालन में नवनिर्मित तकनीक आदि का ज्ञान दिया जाता है। ल्यूपिन ह्यूपिन वेलफेयर एंड रिसर्च फाउंडेशन, कृष्णानगर, भरतपुर, राजस्थान, राष्ट्रीय बागबानी बोर्ड, लालकोठी, जयपुर, राजस्थान, मधुमक्खी पालन एंड शोध संस्थान कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, पूसा रोड, नई दिल्ली में वैज्ञानिक विधि से मधुमक्खी पालन की जानकारी दी जाती हैं। यह ऐसा व्यवसाय है, जो ग्रामीण क्षेत्र के विकास का पर्याय बन सकता है। इससे बहुत

आसानी से ग्रामीण युवाओं की रोजगार की समस्या को सुलझाया जा सकता है। इस उद्योग को शुरू करने के लिये भलीभाँति प्रशिक्षण लेकर इसे एक आदर्श अतिरिक्त आय के स्त्रोत के रूप में शुरू किया जा सकता है।

7. केंचुआ खाद/वर्मीकम्पोस्ट बनाना

केंचुए को किसान का मित्र माना जाता रहा है। ये प्राकृतिक रूप से भूमि की जुताई कर मिट्टी को भुरभुरा बनाते हैं व वायुसंचार तथा जल शोषण में वृद्धि करते हैं। एक किलो केंचुआ वर्ष भर में 50–60 किलो केंचुआ पैदा कर सकता है। केंचुआ खाद बनाने में खेती के सारे बेकार पदार्थों, जैसे डंठल, सड़ी घास, भूसा, गोबर, चारा आदि का प्रयोग हो जाता है। सब मिलाकर केंचुए से 60–70 दिनों में खाद तैयार हो जाती है। इस खाद की प्रति एकड़ खपत यूरिया की अपेक्षा एक चौथाई है। इसके प्रयोग से मिट्टी को नुकसान भी नहीं पहुँचता है। फसल की उत्पादकता भी 20–30 प्रतिशत बढ़ जाती है। केंचुआ खाद बनाने पर यदि किसान ध्यान दें तो वे अपने खेतों में प्रयोग करने के बाद इसे बेच भी सकते हैं। यह किसान भाईयों के लिए आमदनी का एक अतिरिक्त स्रोत भी हो सकता है। वर्मीकम्पोस्ट का भूमि में प्रयोग करने पर यह नाइट्रोजन 17.5–25 प्रतिशत, फास्फोरस 1.5–2.25 प्रतिशत व पोटाश 1.25–2.0 प्रतिशत तक प्रदान करते है। वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि आसान व कृषि अपशिष्ट जैसे पत्ती, कचरा, डंठल आदि डालकर कम लागत में खेत पर ही की जा सकती है व छनी हुयी खाद को प्लास्टिक थैलियों या कंटेनर में भर कर बेचा जा सकता है। इसके लिये भी कृषि विज्ञान केन्द्रों व अनुसंधान संस्थाओं द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। मिट्टी में रहने वाला केंचुआ रोज अपने वजन के बराबर कचरा/मिट्टी खाता है और उससे मिट्टी की तरह दानेदार खाद बनाता है। भूमि की उपरी सतह पर रहनेवाले लंबे गहरे रंग के केंचुए जो अधिकतर बरसात के मौसम में दिखाई पड़ते हैं, खाद बनाने के लिए उपयुक्त हैं। भूमि की गहरी सतह में रहनेवाले सफेद मोटे केंचुए खाद बनाने के लिए उपयुक्त नहीं हैं। केंचुए जमीन भी बनाते हैं जिससे मिट्टी में हवा का वहन होता है एवं मिट्टी की पानी धारण करने की क्षमता बढ़ती है। 20 फुट लंबे 1 बेड में करीब 1000 किलो तक सड़ा हुआ कचरा डाला जा सकता है। इसमें शुरूआत में 1000 केंचुए डालना आवश्यक है। रोज बेड में हल्का–हल्का पानी छिड़कना आवश्यक है ताकि 50 से 60 प्रतिशत नमी कायम रहे। उन्हें किसी भी प्रकार का कच्चा कचरा, कच्चा गोबर भोजन के रूप में नहीं दिया जा सकता। कच्चे गोबर के विघटन की प्रक्रिया के दौरान उससे गर्मी उत्पन्न हो सकती है जो केंचुओं के लिए हानिकारक होती है। अतः हमारे खेत में उत्पन्न होने वाले कचरे एवं गोबर को अलग से सड़ाना आवश्यक है। इसके लिए पेड़ की छांव में 5'x5'x5' फुट के ढ़ेर बनाए जा सकते हैं। इस ढेर में कचरे का हर एक स्तर 5–7 इंच तक मोटा हो सकता है। हर एक स्तर को गोबर पानी से भिगोकर उस पर दूसरा स्तर चढ़ा सकते हैं। यदि सूखा अथवा ताजा गोबर उपलब्ध है तो कचरे के स्तर के उपर गोबर का एक स्तर (2–3 इंच) चढ़ाया जा सकता है। इसे भी नम करना आवश्यक है। इस तरह परत के उपर परत चढ़ाकर 5 फुट तक ऊँचा ढ़ेर बनाया जा सकता है। पूरे ढेर को काले प्लास्टिक से ढकना अनिवार्य है, यदि काला प्लास्टिक न हो तो पूरे ढेर को अच्छी तरह मिट्टी से ढककर गोबर से लिपाई कर दें। ढेर में 2–3 दिन के अंतर से हल्का–हल्का पानी छिड़कना जरूरी है, ताकि नमी बनी रहे। 15 दिन बाद इस ढेर को पलटना जरूरी है ताकि उसकी गर्मी निकल जाए। 30 दिन बाद ढेर को अच्छी तरह फैला दें। उसकी गर्मी निकलने के बाद उसे वर्मी बेड में केंचुओ के भोजन के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। इस तरह सड़ाया हुआ कचरा केंचुओं के लिये अच्छा भोजन है। तापमान 20° से 25° से.ग्रे. तक बना रहे। पूरे बेड को घास के पतले स्तर अथवा टाट की बोरियों से ढ़कना आवश्यक है ताकि सतह से नमी का वाष्पीकरण न हो।

केंचुए सूर्य का प्रकाश एवं अधिक तापमान सहन नहीं कर सकते इसलिए केंचुआ खाद के उत्पादन के लिए छायादार जगह का होना आवश्यक है। यदि पेड़ की छाया उपलब्ध न हो तो लकड़ी गाड़कर कच्चे घास फूस का शेड बनाया जा सकता है। यदि बड़े पैमाने में व्यावसायिक स्तर पर खाद का उत्पादन करना हो तो पक्का टिन अथवा सिमेंट की चद्दर का उपयोग करके शेड बनाया जा सकता है। केंचुआ खाद उत्पादन के लिए वर्मी बेड बनाए जाते हैं जिसकी लंबाई 20 फुट तक हो सकती है किन्तु चौड़ाई 4 फुट से अधिक एवं ऊँचाई 2 फुट से अधिक नहीं होनी

चाहिए। इस बेड में पहले नीचे की तरफ ईंट के टुकड़े (3"–4") फिर उपर रेत (2") एवं मिट्टी (3") का स्तर दिया जाता है जिससे विपरीत परिस्थिति में केंचुए इस बेड के अंदर सुरक्षित रह सकें। इस बेड के ऊपर 6 से 12 इंच तक पुराना सड़ा हुआ कचरा केंचुओ के भोजन के रूप में डाला जाता है। 40 से 50 दिन के बाद जब घास की परत अथवा टाट बोरी हटाने के बाद हल्की दानेदार खाद ऊपर दिखाई पड़े, तब खाद के बेड में पानी देना बंद कर देना चाहिए। ऊपर की खाद सूखने से केंचुए धीरे–धीरे अंदर चले जाएंगे। ऊपर की खाद के छोटे–छोटे ढेर बेड में ही बनाकर एक दिन वैसे ही रखना चाहिए। दूसरे दिन उस खाद को निकालकर बेड के नजदीक में उसका ढेर कर लें। खाली किए गए बेड में पुनः दूसरा कचरा जो केंचुओं के भोजन हेतु तैयार किया गया हो, डाल दें। खाद के ढेर के आसपास गोल घेरे में थोड़ा पुराना गोबर फैला दें और उसे गीला रखें। इसके ऊपर घास ढक दें। इस प्रक्रिया में खाद में जो केचुएं रह गए हैं वे धीरे–धीरे गोबर में आ जाते हैं। इस तरह 2–3 दिन बाद खाद केंचुओं से मुक्त हो जाती है। बचे कचरे को केंचुओं सहित नजदीक के वर्मी बेड में डाल देते हैं। खाद को छानकर बोरी में कर दें अथवा छायादार जगह में एक गड्ढ़े में एकत्र करें और इस गड्ढ़े को ढककर रखें ताकि खाद में नमी बनी रहे। इस प्रकार एक बेड से करीब 500 से 600 किलो केंचुआ खाद 30–40 दिन में प्राप्त होती है।

8. मशरूम उत्पादन

मशरूम उत्पादन भी कम जगह व लागत लगाकर आसानी से किया जा सकता है। इसके लिये प्रशिक्षण कार्यक्रम राज्य सरकारों, कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा आयोजित किये जाते हैं। मशरूम उत्पादन के लिये प्रौद्योगिकी को भलीभाँति समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके अभाव में अपेक्षित उत्पादन न होकर फसल रोगग्रस्त हो जाती है। परन्तु उपयुक्त विधि द्वारा इसकी खेती से 4000–5000 रू प्रतिमाह आसानी से कमाया जा सकता है। हिमाचल प्रदेश व दिल्ली में मशरूम उद्योग काफी फल फूल रहा है। बेरोजगार युवक व महिलायें इसे आसानी से अपना सकती हैं। सामान्य तकनीक से मशरूम उत्पादन करने वालो की अपेक्षा प्रशिक्षण लेकर आधुनिक तकनीकों द्वारा उत्पादन कर हिमाचल की कई कृषक महिलाओं ने अपना अलग ही स्थान बनाया है। जोधपुर, समस्तीपुर, रॉची, हिसार, पंतनगर, लुधियाना, आदि स्थानों पर कृषि अनुसंधान केन्द्र व विश्वविद्यालय में प्रशिक्षण कार्यक्रम समय समय पर आयोजित कराये जाते हैं। जिन किसान भाइयों के यहां बाजार नजदीक नहीं है, उन्हें डिंगरी (ड्राई मशरूम) की फसल लेनी चाहिए। आज पूरी दुनिया में डिंगरी का 80 हजार करोड़ का बाजार है। जहां धान की फसल होती है, वहां इसकी खेती की संभावनाएं सबसे अधिक होती हैं क्योंकि इसकी खेती में पुआल का विशेष रूप से प्रयोग होता है। भारत में मशरूम उत्पादन का इतिहास लगभग तीन दशक पुराना है परंतु लगभग 10–12 वर्षों के दौरान मशरूम उत्पादन में लगातार वृद्धि दर्ज की गई है। मशरूम अपने उच्च स्तरीय खाद्य मूल्यों के कारण ही सम्पूर्ण विश्व में अपना एक विशेष महत्व रखता है। मशरूम में काफी मात्रा में प्रोटीन, फोलिक एसिड, विटामिन तथा मिनरल होते है। फोलिक एसिड का रक्ताल्पता (एनीमिया) को दूर करने में अपना चिकित्सीय महत्व है। मशरूम आहार के तौर पर उपयोग में लाया जाता है तथा फोलिक एसिड की उपस्थिति होने के कारण मशरूम एनीमिक रोगियों के लिए लाभप्रद है। मशरूम पौष्टिक, रोगरोधक, स्वादिष्ट तथा विशेष महक के कारण आधुनिक युग का एक महत्वपूर्ण खाद्य आहार है।

दूधिया मशरूम: दूधिया मशरूम को अन्य मशरूम की तुलना में अधिक तापक्रम 25–35° से.ग्रे. पर उगाया जा सकता है। इस मशरूम को रिले फसल के रूप में अर्थात जब अन्य मशरूम के लिए उपयुक्त वातावरण मौजूद न हो, उस परिस्थिति में लिया जा सकता है। इस मशरूम की उत्पादन तकनीक सस्ती व सरल है एवं इसमें कम्पोस्ट की आवश्यकता नहीं होती है। इस मशरूम का आकार बहुत ही आकर्षक होता है एवं सफेद दूध के समान रंग होने से "दुध छत्ता" के नाम से भी जाना जाता है। इसमें खनिज तत्व भी अधिक मात्रा में मौजूद होते है। दूधिया मशरूम के उत्पादन के लिए फार्मेलिन 135 मि.ली. एवं 5 ग्राम बाविष्टीन दवा को 100 लीटर पानी में अच्छे से मिलाये। दवा मिश्रित पानी में 12 से 14 किलो गेंहूँ भूसा या पैरा कुट्टी भिगायें एवं पालीथीन सीट से ढक दें। 8 से 10 घंटे बाद भींगे हुऐ उपचारित भूसे को टोकरी या लोहे की जाली में ढक कर

अतिरिक्त पानी को निथार दिया जाता है । निथारे गए भूसे को साफ जगह पर पालीथीन सीट के ऊपर छायादार जगह में 2 घंटे के लिये फैला दिया जाता है जिससे अतिरिक्त नमी हवा से सूख जाये। भींगे भूसे का वजन लगभग 40 किलो हो जाता है इसे 10 भाग में विभाजित किर लिया जाता है। 5 किलो क्षमता की थैली में भूसे को 4 प्रतिशत की दर से परत विधि द्वारा बुआई करते हुऐ भरें एवं नाईलोन रस्सी से थैली का मुंह बांध दें एवं थैली के निचले हिस्से में सूजे से 4–5 छिद्र बना दें। थैली रखने के 24 घंटे पहले कमरों को 2 प्रतिशत फार्मेलीन से छिड़काव करें। बीजयुक्त थैली को 28 से 32° तापमान से छिड़काव करें। बीजयुक्त थैली को 28 से 32° तापमान में रख दे। लगभग 22 से 25 दिन में फफूंद थैली में फैल जाता है। इसे स्पानिंग कहते है। कवकजाल फैले हुऐ बैगों में केसिंग मिट्टी (5–6 दिन पहले, खेत की मिट्टी एवं रेत का 1:1) को 2 प्रतिशत फार्मेलिन से उपचारित करने के बाद 4–5 से.मी. की परत चढायें। इस दौरान कमरे का तापमान 28 से 30° बनाये रखें। मशरूम कलिकाऐं (पिन हेड) 5 से 6 दिन में बनने लगता है। इस अवस्था में कमरे का तापमान 30–32° बनायें रखे तथा बैंगों में पानी का हल्का छिड़काव करें। पिन हेड आने के 4 से 6 दिन बाद दूधिया मशरूम पूर्णतया विकसित हो जाता है। पूर्ण विकसित मशरूम की तुड़ाई करें। पहली तुड़ाई के 8 से 10 दिन बाद पुनः दूधिया मशरूम की फसल तैयार हो जाती है। इसी प्रकार तीसरी फसल प्राप्त करें।

आयस्टर मशरूम: आयस्टर मशरूम को ढिंगरी के नाम से भी जाना जाता है। इस मशरूम की खेती लगभग वर्षभर की जा सकती है। इसके लिये अनुकूल तापक्रम 20–30° सेन्टीग्रेड तथा आपेक्षित आर्द्रता 70–90 प्रतिशत होती है। आयस्टर मशरूम की खेती वैज्ञानिकों की राय में ग्रामीणों के उत्थान की एक सरल व सस्ती तकनीक है। आयस्टर मशरूम के उत्पादन के लिए 100 लीटर पानी में 5 ग्राम बाविष्टिन दवा एवं 125 मि.ली. फार्मेलिन को ठीक से मिला देते है। 12 किलो गेहूं भूसा या धान की पैरा कुट्टी को 14–15 घंटे तक उपरोक्त दवा में भिगोते हैं। उपचारित भूसे/पैरा कुट्टी को टोकनी या जाली के ऊपर पलट दे जिससे पानी पूरी तरह निकल जाए। निथारी गई पैराकुट्टी को साफ पालीथीन सीट पर 2–3 घंटे के लिए फैला देते हैं। उपचारित भूसा/पैरा कुट्टी जब भीगकर 40 किलो वजन कम हो जाता है उसमें 3 प्रतिशत की दर से मशरूम स्पान (बीज) को मिलाते है। 4 किलो स्पॉन मिले भूसे या पैरा कुट्टी को 5 किलो क्षमता की पालीथीन में भरकर नाइलान रस्सी से बांध कर थैली के नीचे भाग पर सूजे द्वारा 4–5 छिद्र कर दिया जाता है। बैग रखने के 24 घंटे पहले कमरों को 2 प्रतिशत फार्मेलिन से उपचारित किया जाता है तत्पश्चात् उपचारित कमरों में बीज युक्त थैलों को रैक पर रखते है। लगभग 15–20 दिन में कवकजाल पालीथीन में फैल जाता है। कवकजाल फैले हुऐ थैलों से पालीथीन को काट कर हटा दिया जाता है। फिर नाइलोन रस्सी से बांध कर इन बंडलों को रैक में लटका दिया जाता है। लटके बंडलो पर साफ पानी से हल्का छिड़काव करें एवं कमरे का तापक्रम 24–28° तक एवं आर्द्रता 85–90 प्रतिशत तक बनाये रखें। प्रकाश के लिए 3–4 घंटे के लिए खिड़कियों को खोल दें या ट्यूबलाईट को 4–6 घंटे तक जलाये रखें। मशरूम कलिकायें 2–3 दिन में बन जाती है जो 3 से 4 दिन में तोड़ने योग्य हो जाती है। मशरूम कलिकायें जब पंख की आकार की हो जायें तब इन्हें मरोडकर तोड़ लिया जाता है। दूसरी फसल पहली तुडाई के 6–7 दिन बाद तैयार हो जाती है एवं तीसरी फसल दूसरी तुडाई के सात दिन बाद तैयार हो जाती है।

खंड–2

6

बीजीय मसालों की उन्नत कृषि तकनीकी

बी.आर. मोरवाल[1], पी. पगारिया[2] एवं एस. दास[3]

1. प्रस्तावना
2. बीजीय मसालों की उन्नत किस्में
3. फसलों की विस्तृत जानकारी

1. प्रस्तावना

विश्व में भारत देश मसालों का सबसे बडा उत्पादक व निर्यातक देश है। प्राचीन समय से ही भारत को मसालों की भूमि के नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार उत्तरी भारत में बीजीय मसालों की खेती की जाती है। बीजीय मसालों की दृष्टि से राजस्थान का देश में सर्वोतम स्थान है, जहाँ उत्पादन में 73 प्रतिशत भाग व क्षेत्रफल में 61 प्रतिशत भाग राजस्थान राज्य का है। राजस्थान को बीजीय मसालों का कटोरा कहा जाता है। राजस्थान में उत्पादित मसालों की गुणवत्ता भी अच्छी मानी जाती है। राजस्थान में कुल 7.63 लाख हैक्टेयर मे मसालों की खेती की जाती है एवं 6.10 लाख टन उत्पादन होता है। जहाँ मारवाड क्षेत्र जीरा उत्पादन में अग्रणी है वहीं नागौर क्षेत्र में होने वाली मेथी पूरे भारत मे प्रसिद्ध है। बांरा मे धनिया व टोंक, सिरोही, उदयपुर एवं पाली में सौंफ की खेती की जाती है ।

2. बीजीय मसालों की उन्नत किस्में

जीरा	मैथी	धनिया	सौंफ
आर. जेड. 19: यह किस्म स्थानीय किस्मों कि तुलना में रोगों से कम प्रभावित होती है। इसकी पकव अवधि 125 दिन एवं औसत उपज 5–6 क्वि./है. **आर. जेड. 209**: यह किस्म 120 से 125 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा इसमें छाछिया रोग का प्रकोप भी कम होता है। इसकी औसत उपज 5–6 क्वि./है.	**आर. एम. टी. 1**: इस किस्म के दाने चमकीले व पीले रंग के होते हैं तथा यह किस्म जड़ गलन रोग रोधी भी है यह किस्म 140–150 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज 15–20 क्विं./है. **आर. एम. टी. 143**: इस किस्म दाने मोटे और विशेष पीले रंग के होते हैं। यह किस्म छाछिया	**आर. सी. आर. 41**: यह किस्म तना सूजन व उकठा रोग रोधी है जो 140– 150 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज 6 –7 क्वि./है. **आर. सी. आर. 446**: यह शीघ्र पकने वाली किस्म है और मूल ग्रन्थि रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी किस्म है।	**आर. एफ. 101**: यह किस्म मध्यम ऊँचाई वाली है इस किस्म के छत्रक बडा व मोटे दाने वाले होते हैं। इसके दाने में 1.34 प्रतिशत तेल की मात्रा पायी जाती है तथा यह 150–160 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज 15 क्वि./है. है।

[1–3]कृषि विज्ञान केन्द्र दांता बाडमेर (राजस्थान)। ई–मेल: kvkbarmer@yahoo.com; Mobile: 99293-65620

जीरा	मैथी	धनिया	सौंफ
आर. एस. 1: यह शीघ्र पकने वाली किस्म है व देशी किस्मे कि तुलना मे अधिक रोगरोधि है व साथ ही 20–25 प्रतिशत अधिक उपज देती है। **जी. सी.: 1** –इस किस्म के पौधे सीधे खडे, दाने बडे और गहरे भूरे रंग के होते हैं। उखटा रोग के प्रति सहनसील व 105–110 दिन में पक कर तैयार हो जाती है और औसत उपज 5 – 6 क्वि. /है. है। **जी. सी.4**:–इस किस्म के पौधे मध्यम ऊचाई वाले, तथा अधिक हरापन लिए हुए होते हैं। उखटा रोग के प्रति रोगरोधी है तथा 110 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज 8– 10 क्वि./है.।	रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है तथा यह 140–150 दिन में पक जाती है तथा इसकी औसत उपज 16 क्वि./है. तक है। **आर. एम. टी. 305**: यह किस्म चुर्णी फफूद रोग एवं मूलगाँठ प्रतिरोधी है। यह किस्म 120 दिन में पक कर तैयार हो जाती है तथा इसकी औसत उपज 15–17 क्विं./है	इसकी औसत उपज 12 क्वि./है. है। **आर. सी. आर. 446**: यह तना सूजन रोग के प्रतिरोधी किस्म है और 130 दिन में पक कर तैयार हो जाती है इसकी औसत उपज 10 क्वि. /है. है।	**आर. एफ. 125**:– यह शीघ्र पकने वाली किस्म है इसके पौधे छोटे होते हैं इस किस्म से 17 क्वि./है. की उपज ली जा सकती है। **ए.एफ.1**: इसका पौधा बडा एवं शाखाओं युक्त होता है इसके दाने बोल्ड होते हैं। यह किस्म 180–190 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा यह सीधी बुवाई द्वारा 19 तथा रोपण विधि द्वारा 25 क्वि./है. तक उपज देती है।

3. फसलों की विस्तृत जानकारी

जीरा :

बुवाई का समय: 15 नवम्बर के आसपास

बीज की मात्रा: 12 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर

बीजोपचार: कार्बेण्डाजिम 2 ग्राम या बाविस्टीन 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. या ट्राइकोडरमा 4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित करें।

खाद एवं उर्वरक: गोबर की खाद 10 टन तथा नाइट्रोजन 30 कि.ग्रा., फास्फोरस 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर डालें। नत्रजन की अधिक मात्रा व फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय देवें एवं शेष बची नत्रजन की मात्रा खडी फसल में 35–40 दिन बाद देनी चहिए।

खरपतवार नियन्त्रण: पेण्डामिथेलीन 1 कि.ग्रा प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई के 1–2 दिन बाद छिड़काव करे। साथ ही बुवाई के 25–30 दिन व 55–60 दिन बाद निराई गुडाई करें।

सिचाई: बुवाई के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करें। इसके बाद भूमि की बनावट व मौसम के अनुसार 20–25 दिन के अन्तराल पर 4–5 सिंचाई पर्याप्त रहती है।

कीट, रोग एवं प्रबन्धन: मोयला डाइमिथोएट 30 ई.सी. 500 मि.ली. या ईमिडाक्लोप्रिड 500 मि.ली. प्रति हैक्टेयर दर से छिडकाव करना चाहिए।

उकठा रोग: गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें व बुवाई से पूर्व बीज को उपचारित करें एवं रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन करना चहिए ।

झुलसा ब्लाईटः मेन्कोजेब डाइथेन एम 45 का 2 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से छिडकाव करें आवश्यकतानुसार 10–15 दिन बाद दुबारा छिड़काव करें।

छाछया/चूर्णी फफूंदः रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे ही 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर दर से गंधक का भुरकाव करे। कैराथेन का छिडकाव करें।

कटाईः जीरे की फसल 105–130 दिन मे पक कर तैयार हो जाती है। पौधे की कटाई दराती से जमीन की सतह से थोडी ऊपर से की जाती है।

भण्डारणः बीजों की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए भण्डारण के समय दानों मे नमी 9–10 प्रतिशत से अधिक न हो।

उपजः उन्नत शस्य विधि से खेती करने पर जीरे की औसत उपज 6–8 क्विंटल प्रति हैक्टेयर प्राप्त की जा सकती है।

मैथी

बुवाई का समयः 15 अक्टूबर–10 नवम्बर तक करनी चहिए।

बीज की मात्राः 20–25 कि.ग्रा./है.

बीजोपचारः कार्बेण्डाजिम या मेन्कोजेब 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज तथा राइजोबियम व पी.एस.बी. कल्चर प्रत्येक 600 ग्राम/है. की दर से उपचारित करें।

खद एवं उर्वरकः गोबर की खाद 10–15 टन तथा नाइट्रोजन 20 कि.ग्रा. फास्फोरस 40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर डालनी चाहिए।

खरपतवार नियन्त्रणः खरपतवार नियत्रंण के लिए रसायनों मे फ्लूक्लोरेलिन 750 मी. ली. प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व या पेण्डामिथेलीन 1 कि.ग्रा प्रति हैक्टेयर दर से बुवाई के 1–2 दिन बाद छिड़काव करें। साथ ही बुवाई के 25–30 दिन व 55–60 दिन बाद निराई गुडाई करें।

सिचाईः बुवाई के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करें। इसके बाद भूमि की बनावट व मौसम के अनुसार 20–25 दिन के अन्तराल पर 4–5 सिंचाई पर्याप्त रहती है। लेकिन फलियां व बीज बनते समय भूमि मे पर्याप्त मात्रा में नमी होनी चहिए।

कीट, रोग एवं प्रबन्धनः मोयला डाइमिथोएट 30 ई. सी. 500 मि.ली. या ईमिडाक्लोप्रिड 500 मि.ली. प्रति हैक्टेयर दर से छिड़काव करना चाहिए।

बरूथीः इथियॉन 50 ई. सी. का 0.02 प्रतिशत का घोल बनाकर छिडकाव करें।

छाछया/चूर्णी फफूंदः रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से गंधक का भुरकाव करें। कैराथेन का छिडकाव करें।

तुलासिताः मेन्कोजेब का 2 ग्रा. प्रति लीटर की दर से घोल बनाकर छिडकाव करें आवश्यकतानुसार 10–15 दिन बाद दुबारा छिड़काव करें।

जडगलनः बाविस्टन 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज को उपचारित करें। बाविस्टन के 0.1 प्रतिशत घोल से पौधे के पास डैचिंक करें।

पर्ण धब्बा: मेन्कोजेब 0.2 प्रतिशत या कार्बेण्डाजिम 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें आवश्कतानुसार 10–15 दिन बाद दुबारा छिडकाव करें।

कटाई: मैथी की फसल लगभग 130–150 दिन मे पककर तैयार हो जाती है। जब पौधे पत्तियाँ पीली होकर झड़ने लगे तब पौधे की कटाई करके छोटी छोटी ढेरियों के रूप में रखें।

भण्डारण: बीजों की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए भण्डारण के समय दानों में नमी 9–10 प्रतिशत से अधिक न हो।

उपज: उन्नत तकनीक अपनाकर मेथी की खेती से औसत उपज 20 से 25 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है।

धनिया

बुवाई का समय: 15 नवम्बर से 15 अक्टूबर

बीज की मात्रा: 10–15 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर

बीजोपचार: कार्बेण्डाजिम 2 ग्राम या बाविस्टीन 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित करें।

खद एवं उर्वरक: गोबर की खाद 10 टन तथा 30 कि.ग्रा. नत्रजन 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 20 कि.ग्रा.पोटाश प्रति हैक्टेयर डालें।

खरपतवार नियन्त्रण: पेण्डामिथेलीन 1 कि.ग्रा प्रति हैक्टेयर दर से बुवाई के 1–2 दिन बाद छिड़काव करें। साथ ही बुवाई के 25–30 दिन व 55–60 दिन बाद निराई–गुडाई करें।

सिचाई: बुवाई के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करें। इसके बाद भूमि की बनावट व मौसम के अनुसार 20–25 दिन के अन्तराल पर 5–7 सिंचाई पर्याप्त रहती है।

कीट, रोग एवं प्रबन्धन: पहला छिडकाव: पुष्पन अवस्था में क्यूनालफॉस 25 ई.सी. 0.07 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए। दूसरा छिड़काव: डाइथेन एम 45 का 0.2 प्रतिशत घोल या डाईमिथोएट 30 ई.सी. 0.1 प्रतिशत घोल छिड़काव पहले छिड़काव के 15 दिन बाद करें। गंधक चूर्ण का 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करें।

कटाई: धनिया की फसल 105–140 दिन में पककर तैयार हो जाती है। पौधे की कटाई दंराती से जब दाने का रंग पीला पड़ने लगे तब करनी चहिए।

भण्डारण: बीजों की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए भण्डारण के समय दानों में नमी 9–10 प्रतिशत से अधिक न हो।

उपज: उन्नत शस्य विधि से खेती करने पर धनिया की औसत उपज 10–12 क्विंटल प्रति हैक्टेयर प्राप्त की जा सकती है।

सौंफ

बुवाई का समय: 15 सितम्बर से 15 अक्टूबर

बीज की मात्रा: 8–10 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर

बीजोपचार: कार्बेण्डाजिम या बाविस्टीन 2–3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित करें।

खाद एवं उर्वरक: गोबर की खाद 10 टन तथा 30 कि.ग्रा. नत्रजन 30 कि.ग्रा. फास्फोरस व 20 कि.ग्रा.पोटाश प्रति हैक्टेयर डालें।

खरपतवार नियन्त्रणः पेण्डामिथेलीन 1 कि.ग्रा प्रति हैक्टेयर दर से बुवाई के 1–2 दिन बाद छिड़काव करें। साथ ही बुवाई के 25–30 दिन व 55–60 दिन बाद निराई–गुडाई करें।

सिचाईः बुवाई के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करें। इसके बाद भूमि की बनावट व मौसम के अनुसार 15–20 दिन के अन्तराल पर 8–10 सिंचाई पर्याप्त रहती है।

कीट, रोग एवं प्रबन्धनः पहला छिडकावः पुष्पन अवस्था में क्यूनालफॉस 25 ई. सी. 0.07 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए। दूसरा छिडकावः डाइथेन एम 45 का 0.2 प्रतिशत घोल या डाईमिथोएट 30 ई.सी. 0.1 प्रतिशत घोल छिड़काव पहले छिड़काव के 15 दिन बाद करना चाहिए। गंधक चूर्ण का 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करें।

कटाईः सौंफ की फसल लगभग 150–190 दिन में पक जाती है, जब फसल पूर्ण रूप से पककर तैयार हो जाए तब पौधे की कटाई दंराती से जब दाने का रंग पीला पडने लगे तब करनी चहिए।

भण्डारणः बीजों की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए भण्डारण के समय दानों में नमी 9–10 प्रतिशत से अधिक न हो।

उपजः उन्नत शस्य विधि से खेती करने पर सौंफ की औसत उपज 17–20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर प्राप्त की जा सकती है।

जैविक खेती

- तीन वर्ष तक फसल चक्र अपनावें।
- गोबर की खाद 10 टन प्रति हैक्टेयर डालें।
- ट्राईकोडर्मा 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज द्वारा बीजोपचार साथ ही राईजोबियम व पी.एस.बी. कल्चर प्रत्येक 600 ग्राम / हैं की दर से प्रयोग में लेवें।
- ट्राईकोडर्मा 2.5 कि. ग्रा. प्रति हैक्टेयर को 120 कि.ग्रा. गोबर में मिलाने के 15 दिन बाद सिंचाई के साथ भूमि में देवें।

7

उद्यानिकी फसलों में टपक (बून्द–बून्द) सिंचाई का उपयोग एवं महत्व

बी.आर. मोरवाल[1], पी. पगारिया[2] एवं एस.दास[3]

1. प्रस्तावना
2. टपक सिंचाई के लाभ
3. फर्टिगेशन
4. फर्टिगेशन के लाभ
5. फर्टिगेशन में प्रयोग होने वाले विभिन्न यंत्र
6. ड्रिप सिचाई तंत्र की लागत

1. प्रस्तावना

टपक (बून्द–बून्द) नई और उन्नत सिंचाई की ऐसी विधि है जिसके प्रयोग सें सिंचाई जल की पर्याप्त मात्रा में बचत की जा सकती है। ड्रिप तंत्र एक अधिक आवृत्ति वाला सिंचाई तंत्र है जिससे जल को पौधों के मूल क्षेत्र के आस–पास की आवश्यकतानुसार दिया जाता है। कम अंतराल पर सिंचाई करने से पौधों की जड़ों में जल तनाव नही रहता है एवं पौधों की वृद्धि भी अधिक होती है। इस प्रकार टपक सिंचाई द्वारा जल की विभिन्न प्रकार के पारम्परिक नुकसान जैसा की गहन रिसाव (परिस्रवण), उप्रवाह तथा वाष्पीकरण आदि से बचा जा सकता है। यह विधि मृदा के प्रकार, खेत के ढाल, जल के स्त्रोत और किसान की योग्यता के अनुसार अधिकतर फसलों के लिए अपनाई जाती। फसलों की पैदावार बढने के साथ–साथ इस विधि से उपज की उच्च गुणवत्ता, रसायन एवं उर्वरकों का दक्ष उपयोग, जल के विक्षालन एवं अप्रवाह में कमी, खरपतवारों में कमी और टपक विधि से 60–70 प्रतिशत तक जल की बचत की जा सकती है। जल तथा रसायनों के लगातार पर्याप्त मात्रा में बचत के साथ–साथ रसायनों के लगातार प्रयोग से होने वाले प्रदूषण से पर्यावरण को भी बचाया जा सकता है। फलस्वरूप टपक सिंचाई का उपयोग पूरे विश्व में तेजी से बढ़ रहा है। सीमित जल संसाधनों और दिनों–दिन बढती हुई जलावश्यकता और पर्यावरण की समस्या को कम करने के लिए टपक (बून्द बून्द) सिंचाई तकनीक निःसंदेह बहुत उपयोगी साबित होगी।

2. टपक सिंचाई के लाभ

- टपक सिंचाई के अर्न्तगत फल वाली फसलें जैसे बेर, शहतूत, अंगूर, किन्नो, सेब, अनार, आम एवं अमरूद आदि एवं सब्जियों वाली फसलों में टमाटर, खीरा, मटर, बन्द–गोभी, भिन्डी, प्याज, आलू एवं बैंगन तथा अन्य फसलों में सजावटी पौधे, फूल जैसे–रजनीगंधा, चमेली, कारनेशन, गुलाब आदि तथा औषधियों में प्रयुक्त होने वाली फसलें सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।
- टपक सिंचाई में जल रिसाव व वाष्पन न होने के कारण अन्य परामपरागत सिंचाई विधियों की तुलना में 70 प्रतिशत तक जल की बचत और 25–30 प्रतिशत तक पैदावार में वृद्धि हो सकती है।

[1–3]कृषि विज्ञान केन्द्र, दांता, बाडमेर, राजस्थान। ई–मेलः kvkbarmer@yahoo.com; Mobile: 99293-65620

- टपक सिंचाई में सिंचाइयों के बीच का अन्तराल बहुत कम रखा जाता है जिससे पौधे सम्पूर्ण वृद्धि काल में जल तनाव मे नहीं रहते हैं।
- जल प्रयोग पर उच्च स्तरीय नियंत्रण टपक सिंचाई के मुख्य लाभों में से एक हैं।
- सीमान्त मृदाओं तथा उन भू–भागों को जो अन्य विधियों द्वारा सिंचित नहीं किये जा सकते उनको टपक सिंचाई के द्वारा सिंचित किया जा सकता है।
- टपक सिंचाई विधि में जल पौधों के नीचे के क्षेत्रफल को ही नम करता है अतः खरपतवार वृद्धि भी बहुत कम होती है।

3. फर्टिगेशन

फर्टिगेशन दो शब्दों फर्टिलाइजर अर्थात् उर्वरक और इरिगेशन अर्थात् सिंचाई से मिलकर बना है। ड्रिप सिंचाई में जल के साथ–साथ उर्वरकों को भी पौधों तक पहुंचाना फर्टिगेशन कहलाता है। टपक सिंचाई में जिस प्रकार ड्रिपों द्वारा बूंद–बूंद कर के जल दिया जाता है उसी प्रकार रासायनिक उर्वरकों को भी सिंचाई जल में मिश्रित करके उर्वरक अन्तः क्षेपक यंत्र की सहायता से ड्रिपरों द्वारा सीधे पौधों तक पहुंचाया जा सकता है। फर्टिगेशन, उर्वरक देने की सर्वोत्तम तथा अत्याधुनिक विधि है। फर्टिगेशन, फसल एवं मृदा की आवश्यकताओं के अनुरूप उर्वरक व जल का समुचित स्तर बनाए रखने के लिये अच्छी तकनीक के रूप मे जाना जाता है। जल और पोषक तत्वों का सही समन्वय अधिक पैदावार और गुणवत्ता की कुंजी है। फर्टिगेशन द्वारा उर्वरकों को कम मात्रा में बार–बार और कम समय अन्तराल पर पूर्वनियोजित सिंचाई के साथ दे सकते हैं इससे पौधों को आवश्यकतानुसार पोषक तत्व मिल जाते हैं और मूल्यवान उर्वरकों का निक्षालन द्वारा अपव्यय नहीं होता है। सामान्यता फर्टिगेशन में तरल उर्वरकों का ही प्रयोग किया जाता है परन्तु दानेदार और शुष्क उर्वरकों को भी फर्टिगेशन के द्वारा दिया जाता है। फर्टिगेशन द्वारा शुष्क उर्वरकों को देने से पहले उनका जल में घोल बनाया जाता है। उर्वरकों के घोल को फर्टिगेशन से पहले छान लेना चाहिए।

4. फर्टिगेशन के लाभ

- फर्टिगेशन जल एवं पोषक तत्वों के नियमित प्रवाह को सुनिश्चित करता हैं जिससे पौधों की वृद्धि दर तथा गुणवत्ता में वृद्धि होती है।
- फर्टिगेशन द्वारा पोषक तत्वों को फसल की मांग के अनुसार उचित समय पर दे सकते हैं।
- फर्टिगेशन पोषक तत्वों की उपलब्धता और उनका पौधों की जड़ों के द्वारा उपयोग बढ़ा देता है।
- फर्टिगेशन से जल और उर्वरक पौधे के मध्य न पहुंचकर सीधे पौधे की जड़ों तक पहुंचते हैं इसलिए पौधों के मध्य खरपतवार कम संख्या में उगते हैं।
- उर्वरक उपयोग की दक्षता बढती है और उर्वरक की कम मात्रा में आवश्यकता होती है।

5. फर्टिगेशन में प्रयोग होने वाले विभिन्न यंत्र

फर्टिगेशन करने के लिए फर्टिगेशन तंत्र में मुख्यतः तीन अवयवों उर्वरक टंकी, उर्वरक घोलक एवं उर्वरक अन्तः क्षेपक यंत्र का होना आवश्यक है। उर्वरक अन्तः क्षेपक का प्रयोग फर्टिगेशन तंत्र में उर्वरकों के विलयन को ड्रिप तंत्र में अन्तः क्षेपित करने के लिए किया जाता है इसमें मुख्यतः तीन के अन्तः क्षेपण यंत्र (उर्वरक टंकी, वेन्चुरी तंत्र एवं उर्वरक अन्त क्षेपण पम्प) प्रयोग में लाये जाते हैं।

6. ड्रिप सिंचाई तंत्र की लागत

ड्रिप सिंचाई तंत्र लगाने का खर्च मुख्यतः फसल के प्रकार, कतारों एवं पौधों के बीच की दूरी, दो सिंचाइयों का अन्तराल, फसलों की जलावश्यकता ड्रिपर का प्रकार, प्रसाव क्षमता और जल स्त्रोत की दूरी पर निर्भर करता है। ड्रिप तंत्र की प्रति इकाई कुल लागत का लगभग 50 प्रतिशत केवल लैटरल पाइपों पर खर्च हो जाता है। जैसे–जैसे ड्रिप सिंचित क्षेत्र में वृद्धि होती है उसकी तुलना में ड्रिप सिचाई तंत्र की अनुपातिक लागत कम होती जाती है क्योंकि सिंचाई तंत्र के कुछ अवयव वहीं रहते हैं।

8

नेपियर घास : उत्पादन तकनीक एवं प्रबंधन

बी.एस. मीना[1], जी.एस. मीना[2], आर.के. मीना[3] एवं बी.एल. ढाका[4]

1. प्रस्तावना
2. नेपियर घास जलवायु एवं भूमि
3. नेपियर घास की उन्नत किस्में

1. प्रस्तावना

नेपियर घास एक बहुवर्षीय चारे की फसल है। इसके पौधे गन्ने की भांति लम्बाई में बढ़ते हैं जिनसे 40–50 तक कल्ले निकलते हैं। इसे हाथी घास के नाम से भी जाना जाता है। संकर नेपियर घास के चारे में 2.5 से 6 प्रतिशत तक ऑक्सलेट पाया जाता है जिसके कारण इसको अकेले अधिक दिनों तक खिलाने से पशुओं के शरीर में कैल्शियम (चूने) की कमी हो जाती है। इसके बचाव के लिए पशुओं को नेपियर के साथ रिजका, बरसीम या अन्य चारे अथवा दाने एवं खली देनी चाहिए।

बहुवर्षीय फसल होने के कारण इसकी खेती शरद, ग्रीष्म व वर्षा ऋतु में भी की जा सकती है। इसलिए जब अन्य हरे चारे उपलब्ध नहीं होते, उस समय नेपियर का महत्व अधिक बढ़ जाता है। इसके चारे से "हे" भी तैयार किया जा सकता है।

नेपियर की खेती उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, असम, उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, केरल, हरियाणा, मध्यप्रदेश व राजस्थान में की जाती है। राजस्थान का पूर्वी एवं दक्षिण पूर्वी भाग इसकी खेती के लिए उपयुक्त है।

2. नेपियर घास जलवायु एवं भूमि

गर्म व नम जलवायु वाले स्थान जहाँ तापमान अधिक रहता है (25°–28° सेल्सियस), वर्षा अधिक होती है (1000 मी.मी.) तथा वायुमण्डल में आर्द्रता भी अधिक रहती हो वे क्षेत्र नेपियर की खेती के लिए उत्तम माने जाते हैं। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। अधिक ठण्डी जलवायु में फसल की वृद्धि नहीं हो पाती है। पाला नेपियर के लिए हानिकारक होता है। यह घास कई प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है। मटियार दोमट मिट्टी जिसमें प्रचुर जीवांश पदार्थ उपस्थित हो इसके लिए सर्वोत्तम होती हैं। मृदा का पी.एच. मान 6.5 से 8 होना चाहिए।

3. नेपियर घास की उन्नत किस्में

1. पूसा जायन्ट नेपियर: यह किस्म भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली से नेपियर एवं बाजरा के संकरण द्वारा विकसित की गई है। उत्तम गुणों वाली यह संकर किस्म, अन्य देशी किस्मों से दोगुणा हरा चारा उत्पादित करती है। इसमें साधारण नेपियर की अपेक्षा 25 प्रतिशत प्रोटीन तथा 132 प्रतिशत शर्करा अधिक होती है। इसका चारा मुलायम तथा पत्तीदार होता है। इसमें सूखा सहन करने की क्षमता भी होती है।

2. नेपियर बाजरा हाईब्रिड 21 (एन.बी.-21): पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना से विकसित यह किस्म शीघ्र बढ़ने

[1,3]कृषि विज्ञान केन्द्र, करोली। ई–मेल: bs_meena38@yahoo.com; Mobile: 94149-74292
[2,4]कृषि विज्ञान केन्द्र, बून्दी।

वाली होती है। इसके पौधे लम्बे, तने पतले एवं रोंयें रहित होते है। पत्तियाँ लम्बी, पतली तथा चिकनी होती हैं। पौधे में कल्ले अधिक संख्या में निकलते हैं। इसकी पहली कटाई, बुवाई के 50–60 दिन बाद की जा सकती है। इसके बाद 35–40 दिन के अन्तर पर कटाईयाँ ली जा सकती है। यह किस्म एक वर्ष में 1500 से 1800 क्विंटल चारा प्रति हैक्टेयर उत्पादन दे सकती है।

3. अन्य उन्नत किस्में: पूसा नेपियर 1, पूसा नेपियर 2 (सर्दियों में भी उत्पादन सम्भव), ए.पी.बी.एन 1, सी.ओ. 2, 3, 4, पी.बी. एन. 233, एन.बी. 17, एन.बी. 25, एम.बी. 8–95, पी.एन.बी. 87, पी.एन.बी. 72, आई.जी.एफ.आर.आई. 293, आइ.जी.एफ. आर.आई. 6,7,9 आदि।

नेपियर घास को लगाने के लिए खेत की तैयारी

नेपियर घास लगाने से पूर्व खेत की अच्छी तैयारी करनी चाहिए। एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से या डिस्क प्लाऊ से तथा 2–3 जुताइयाँ हैरो या देशी हल से करके पाटे द्वारा भूमि को समतल कर लेना चाहिए। अन्तिम जुताई से पूर्व सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट को खेत में बिखेर कर मिला देना चाहिए।

बीज की मात्रा

नेपियर घास की बुवाई वानस्पतिक भागों द्वारा की जाती है। बुवाई हेतु भूमिगत तना जिन्हें राइजोम कहते हैं को उपयोग में लिया जाता है। तने के 2–3 गांठ वाले टुकडों तथा जडोध द्वारा भी इसे उगाया जा सकता है। राइजोम की मात्रा या भार उनके लगाने की दूरी पर निर्भर करता है। यदि लाइन से लाइन की दूरी दो मीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 सेमी. रखते हैं तो प्रति हैक्टेयर 16500–17000 राइजोम या तनें के टुकडों की आवश्यकता पड़ती है जिनका वजन 12–13 क्विंटल होता है। यदि लाइन से लाइन की दूरी एक मीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 सेमी. रखते है तो 32000–33000 कल्लों (राइजोम) की आवश्यकता होती है जिनका वजन 21–25 क्विंटल होता है।

पौधे से पौधे की दूरी	लाईन से लाईन की दूरी	टुकड़े	वजन
30 सेमी.	2 मी. (200 सेमी.)	16500–17000	12–13 क्विंटल
30 सेमी	1 मी. (100 सेमी.)	32000–33000	24–25 क्विंटल
30 सेमी	90 सेमी.	40,000	30–32 क्विंटल
30 सेमी	75 सेमी.	45,000	35–36 क्विंटल

खाद व उर्वरक

खेत की तैयारी के समय प्रति हैक्टेयर 15–20 टन सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट को खेत में डालकर अन्तिम जुताई करनी चाहिए। बुवाई के समय 50–60 किलो नाइट्रोजन, 80–100 किलो फास्फोरस व 25–30 किलो पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से डालना चाहिए ताकि फसल की वृद्धि शीघ्र हो एवं अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके। बुवाई से पूर्व मिट्टी की जांच करवाकर सिफारिश के अनुसार उर्वरक देना अधिक लाभदायक रहता है।

रोपाई का समय व विधि

जहाँ सिंचाई की सुविधा नहीं हो वहाँ बुवाई जुलाई–अगस्त में करें। नेपियर को लगाने का सर्वोत्तम समय मार्च माह माना जाता है। अधिक गर्मी एवं अधिक सर्दी में पौधे ठीक तरह से स्थापित नहीं हो पाते है। जड़युक्त टुकड़ों द्वारा रोपाई करने हेतु पूरे पौधों को जमीन से खोदकर बाहर निकाल दिया जाता है फिर 15–20 सेमी. लम्बे नये राइजोम को जड़ सहित अलग कर लिया जाता है। यदि टुकड़े बड़े हों तो उसकी पत्तियॉ काट देनी चाहिए, जिससे उत्स्वेदन द्वारा पानी की क्षति कम होगी। बुवाई हमेशा लाईनों में मेड़ों पर करनी चाहिए। उपर्युक्त दूरी पर लाइन बनाकर 2–3 गांठ वाले टुकड़ों को भूमि में 45 डिग्री के कोण पर इस प्रकार लगाऐं कि टुकड़े की एक गांठ जमीन के अन्दर व दूसरी जमीन से ऊपर हरे। टुकड़ों का झुकाव ठीक उसी प्रकार की जाती है जैसे गन्ने की बुवाई की जाती है। बुवाई के तुरन्त बाद सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

नेपियर घास की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि खेत में पर्याप्त नमी बनी रहनी चाहिए। सर्दियों में पाले से बचाव के लिए तथा गर्मियों में सूखे से बचाव के लिए प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। हल्की भूमि में भारी भूमि की अपेक्षा अधिक सिंचाई

की आवश्यकता नहीं होती लेकिन जल निकास की सुविधा जरूर होनी चाहिए।

निराई-गुडाई एवं खरपतवार प्रबंधन

प्रत्येक कटाई के बाद कतारों के बीच में गुड़ाई करनी चाहिए, इससे वायु संचार बढ़ता है तथा भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती है जिससे फसल की बढवार अधिक होती है। फसल लगाने के 2–3 माह तक खरतवार अधिक होते हैं अतः निराई–गुडाई कर इन्हें नियंत्रित करना चाहिए। वर्ष में दो बार (वर्षा प्रारम्भ होने से पूर्व एवं सर्दियों के अन्त में) लाइनों के बीच जुताई करनी चाहिए। रसायनिक खरपतवार नियंत्रण हेतु एट्राजीन 3 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई के तुरन्त बाद छिडकाव करने से खरपतवारों का नियंत्रण हो जाता है।

कीट एवं रोग प्रबंधन

चूंकि नेपियर घास एक चारे की फसल है, अतः इसकी बार–बार कटाई किए जाने के कारण कीट एवं बीमारियों का प्रकोप नहीं होता है। यदि भूमि में दीमक की समस्या हो तो सिंचाई के पानी के साथ क्लोरोपाइरीफॉस 2 ली. प्रति हैकटेयर की दर से देना चाहिए। यदि वर्षा ऋतु में फड़का की समस्या हो तो विशेषज्ञों की सलाह के अनुसार मिथायल पैराथियान का उपयोग किया जा सकता है, लेकिन छिड़काव के एक माह तक चारा पशुओं को नहीं खिलाना चाहिए।

कटाई उपज प्रबंधन

नेपियर घास की पहली कटाई बुवाई के 70–80 दिन बाद करनी चाहिए। इसके बाद 35–40 दिन के अन्तराल पर कटाई करते रहना चाहिए। इस प्रकार कटाई करने से हर कटाई पर 1–1.5 मी. लम्बाई की फसल मिलती रहती है। अधिक समय तक कटाई नहीं करने पर इसके तने सख्त हो जाते हैं और उसमें रेशे की मात्रा बढ़ जाती है जिसके कारण पशु इसे कम खाना पसन्द करते हैं। साथ ही चारे की पाचनशीलता कम हो जाने के कारण पशुओं का दूध उत्पादन कम हो जाता है। सर्दियों में (नवम्बर से फरवरी) पौधों की वृद्धि रूक जाती है और चारे का उत्पादन नहीं मिल पाता है। वर्ष भर में नेपियर से 5–6 कटाई ली जा सकती है जिससे 15–20 प्रतिशत शुष्क पदार्थ होता है। इसके चारे में 7–12 प्रतिशत प्रोटीन होता है व इसकी पाचनशीलता 50–70 प्रतिशत होती है।

9

शुष्क क्षेत्र में खजूर की उन्नत खेती

पी.एच. निकुंभे[1], पी.आर. मेघवाल[2] एवं भगवान सिंह[3]

1. प्रस्तावना
2. खजूर की प्रमुख किस्में
   2.1 मादा किस्में
   2.2 नर किस्में
3. प्रवर्धन
4. खजूर की उन्नत खेती की विधि
5. प्रमुख रोग तथा उनका प्रबंधन
5. प्रमुख कीट तथा उनका प्रबंधन

1. प्रस्तावना

शुष्क क्षेत्र में खजूर एक प्राचीनतम फलदार वृक्ष है। मुख्यतया इस फल की खेती ईरान, इराक, पाकिस्तान, अल्जीरिया, लीबिया, सउदी अरब, मोरक्को, इजराईल, टयूनिशिया, मिश्र एवं भारत इत्यादि देशों में की जाती है। भारत देश में खजूर की खेती व्यावसायिक पैमाने पर गुजरात राज्य के कच्छ क्षेत्र एवं तमिलनाडु राज्य में भी वर्तमान में खजूर की खेती प्रारम्भ की गयी है। राजस्थान के शुष्क व अर्ध–शुष्क वाले क्षेत्र जैसलमेर, बीकानेर, बाड़मेर, जोधपुर, नागौर, चुरू, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़ आदि जिलो में खेती की जा सकती है। राजस्थान में लगभग 800 हैक्टेयर में खजूर की खेती की जा रही है।

पोषक तत्वः खजूर एक स्वादिष्ट एवं पौष्टिक फल है। इसके फल के गूदे में जल (20 प्रतिशत), शर्करा (60–65 प्रतिशत), रेशे (2.5 प्रतिशत), प्रोटीन (2.0 प्रतिशत) तथा वसा, पोटेशियम, केल्शियम, तांबा, मैग्नेशियम, क्लोरिन, सल्फर एवं फॉस्फोरस तत्व (प्रत्येक 2.0 प्रतिशत से कम) पाये जाते हैं। कुछ मात्रा में विटामिन ए, बी1 एवं बी2 भी पाये जाते हैं कार्बोहाइड्रट की प्रचुरता के कारण एक किलो ताजा फलों से लगभग 3150 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती हैं फलों को ताजा फल (डोका अवस्था), मुलायम पिण्ड खजूर एवं सूखा कर छुहारा के रूप में उपयोग में लिया जाता है।

जलवायु एवं मृदा

खजूर को लम्बी गर्म शुष्क, ग्रीष्म ऋतु तथा मध्यम शीत ऋतु और फल पकते समय (जुलाई–अगस्त) वर्षा रहित जलवायु की आवश्यकता होती है। फूल आने व फल पकने के लिए उपयुक्त तापमान क्रमशः 25 एवं 40 डिग्री सैल्सियस होना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु (माह मई–जून) में उच्च तापक्रम पर फलों को पकना प्रारम्भ होता है। इस फल के लिए रेतीली, दोमट एवं अच्छी जल निकास युक्त 7–8 पी. एच.मान वाली मृदा उपयुक्त रहती है। किसी भी अन्य फल वृक्ष की तुलना में यह वृक्ष अधिक क्षारीयता सहन कर सकता है किन्तु अच्छी जमीन एवं मीठे पानी मे इसका उत्पादन अधिक होता है।

2. खजूर की प्रमुख किस्में

2.1 मादा किस्में

बरहीः यह किस्म अधिक पैदावार देने वाली है। इस किस्म के फल मध्यम आकार के व डोका अवस्था में सुनहरे पीले रंग के होते हैं एवं फल खाने में मीठे, मुलायम एवं स्वादिष्ट होते हैं जो इसकी अन्य किस्मों से अलग पहचान बनाते हैं। फल का औसत वजन 13.6 ग्राम तथा उनमें कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 31.5 प्रतिशत पाया जाता है यह मध्यम देरी से

[1–3]भा.कृ.अनु.प.–केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)। ई–मेलः bluekingphn@gmail.com; Mobile: 70730-06564

पकने वाली किस्म है। औसत उपज 100–150 किग्रा प्रति पौधा की दर से प्राप्त होती है। इसके पके फल काफी मुलायम होते हैं व इस अवस्था पर वर्षा होने से नुकसान होता है।

खुनेजी: इस किस्म के फल डोका अवस्था में लाल रंग के एवं मीठे होते हैं जो देखने में बहुत आकर्षक लगते हैं। फल खाने में कुरकुरे एवं स्वादिष्ट होते हैं। इसके फल डोका अवस्था में ताजा खाने हेतु उपयुक्त है। फल का औसत वजन 10.2 ग्राम तथा उनमें कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 43 प्रतिशत पाया जाता है तथा औसत उपज 40–60 किलोग्राम प्रति पौधों की दर से प्राप्त होती है। यह किस्म जल्दी पक कर तैयार होती है।

जामली: यह किस्म मध्यम से देरी में पकने वाली एवं अधिक पैदावार देने वाली है। फलों का रंग सुनहरा पीला होता है। पूर्ण डोका अवस्था में फल खाने में मुलायम एवं मीठे होते हैं। कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 32 प्रतिशत पाया जाता है तथा औसत उपज 80–100 किलोग्राम प्रति पौधों की दर से प्राप्त होती है। इस किस्म में गुच्छे का अधिकतम वजन 13.7 किलोग्राम तक पाया जाता है।

खदरावी: इस किस्म के पेड़ वृद्धि में छोटे होते हैं इस किस्म के फल डोका अवस्था में पीला हरापन लिए होते हैं तथा कसैले होते हैं, आकार में लम्बे, शीर्ष चौड़ा तथा आधार पर हलके चपटे होते हैं। फल का औसत वजन 12.9 ग्राम तथा उनमें कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 36 प्रतिशत पाया जाता है। फलों की परिपक्वता की अवधि मध्यम होती है। डोका के बाद की अवस्थाओं में फलों को वर्षा एवं अधिक वातावरणीय नमी से नुकसान होता है। यह किस्म पिण्ड खजूर बनाने के लिए उपयुक्त होती है। फलों की औसत उपज 60 किलोग्राम प्रति पौध होती है।

खलास: इस किस्म के पेड फल डोका अवस्था में पीले मीठे तथा पिण्ड अवस्था में सुनहरे भूरे होते हैं। इस किस्म के फल गहरे पीले रंग के होते हैं। फल आकार में लम्बे, औसत वजन 15.2 ग्राम तथा उनमें कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 25 प्रतिशत पाया जाता है तथा औसत उपज 60–80 किलोग्राम प्रति पौध होती है। फलों की परिपक्वता की अवधि मध्यम होती है। इसके फल पूर्ण डोका अवस्था पर मीठे ताजा खाने योग्य साथ ही पिण्ड हेतु उपयुक्त है।

सगाई: इस किस्म के फल पीले रंग के होते हैं डोका अवस्था में कसैले होने के कारण ज्यादा स्वादिष्ट नहीं होते हैं एवं पूर्ण पकने पर ही खाने योग्य होते हैं। औसत उपज 60–100 किलोग्राम प्रति पौध होती है। यह किस्म देरी से पकती है। किस्म छुहारा एवं पिण्ड के लिए उपयुक्त है।

मेडजूल: इस किस्म के फलों का रंग डोका अवस्था में पीला नारंगीपन लिए होता है लेकिन इस अवस्था में फल कसैले होते हैं। फल बडे आकार के 20 से 40 ग्राम के एवं आकर्षक होते हैं, फल देर से पककर तैयार होते हैं एवं छुहारा बनाने के लिए अच्छे रहते हैं। फल का औसत वजन 22.880 ग्राम तथा उनमें कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 34.5 प्रतिशत पाया जाता है तथा औसत उपज 75–100 किलोग्राम प्रति पौधो की दर से प्राप्त होती है।

2.2 नर किस्में

घनामी मेल: इस किस्म के पौधे में 10–15 फूलों के गुच्छे आते हैं तथा प्रत्येक गुच्छे में औसत 15–20 ग्राम परागकण निकलते हैं। यह किस्म अधिक मात्रा में परागकण प्राप्त करने के लिए उपयुक्त है परन्तु इस किस्म में परागकण 8–10 दिन देरी से प्राप्त होते हैं।

मदसरी मेल: इस किस्म के पौधे में 3–5 पुष्प गुच्छ आते हैं तथा प्रत्येक गुच्छे में औसत 6–10 ग्राम परागकण निकलते हैं।

3. प्रवर्धन

खजूर के पौधों में नर व मादा फूल अलग–अलग पौधों पर आते हैं खजूर का प्रवर्धन बीज, सकर्स (अंतःभूस्तारी) एवं टिश्यु कल्चर पद्धति के माध्यम से होता है।

बीज: बीज द्वारा बुवाई करने से लगभग 50 प्रतिशत नर एवं 50 प्रतिशत मादा पौधे प्राप्त होने की संभावना रहती है। इस प्रकार से तैयार मादा वृक्ष में विविधता पायी जाती है एवं फलों की गुणवत्ता भी एक जैसी नहीं मिलती साथ ही ऐसे पौधों से फल देरी से आते हैं अतः बीज द्वारा तैयार किये गये पौधों से व्यावसायिक उत्पादन करना आर्थिक रूप से उपयुक्त नहीं है।

सकर्स द्वारा प्रवर्धन: खजूर के पूर्ण विकसित पेड़ों की जड़ों के पास तने के भाग की कलिकाओं से नये पौधों की फुटान निकलती है। जिन्हें सकर्स कहा जाता है। इन सकर्स को मातृ वृक्ष से अलग कर पौध रोपण करने से नया वृक्ष तैयार होता है। जिसके गुणधर्म मातृ वृक्ष के समान पाये जाते हैं। एक वृक्ष से प्रारम्भ के 10 से 15 वर्ष तक 15–20 सकर्स उत्पन्न होते हैं। पौधे लगाने के लगभग 4 वर्ष बाद से पौधे से किस्म के आधार पर 3–5 सकर्स प्रति वर्ष अलग किये जा सकते हैं। इस तरह सकर्स के माध्यम से पौध तैयार करने में काफी समय लगता है। इसके अलावा सकर्स की रोपाई करने में विशेष ध्यान रखना पड़ता है।

टिश्यु कल्चर द्वारा: खजूर के अच्छी किस्म के कुछ पौधे से ही बड़ी संख्या में वर्ष भर पौधे तैयार किये जा सकते हैं पौधों की आनुवांशिक गुणवत्ता मातृ वृक्ष के समान रहती है।

4. खजूर की उन्नत खेती की विधि

पौधे लगाने का समय एवं विधि: खजूर के पौधे वर्षा ऋतु (जुलाई–अगस्त) अथवा बसन्त ऋतु (फरवरी–मार्च) में लगाये जाते हैं। रोपाई से एक माह पूर्व 1 x 1 x 1 मीटर आकार के खड्ड़े खोद लेने चाहिए। पौधे से पौधे तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी 8 x 8 मी रखनी चाहिए। प्रत्येक खड्डे में उपजाऊ मिट्टी तथा सड़ी हुई गोबर की खाद 25 किलोग्राम, 1.5 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट एवं दीमक की रोकथाम हेतु क्युनॉलफास 1.5 प्रतिशत 100–150 ग्राम अच्छी प्रकार मिला कर भरना चाहिए। रोपाई के समय पौधे को गड्डे में रखकर चारों तरफ से मिट्टी दबाकर लगा देना चाहिए। पौधे लगाते समय पौधे के बल्ब का केवल 3/4 हिस्सा मिट्टी के अन्दर रहें तथा क्राउन मिट्टी में नहीं दबें इस बात का ध्यान रखना चाहिए। पौधे लगाने के बाद चारों तरफ मिट्टी का प्लेट फार्म बना देवें ताकि पानी पौधे के सीधे सम्पर्क में नहीं आवे तथा पानी पौधे के क्राउन में ना घुसे। रोपाई के तुरन्त बाद पौधे की सिंचाई कर देनी चाहिए। पौधों को सर्दी–गर्मी एवं तेज हवाओं से बचाने के लिए पहले एक वर्ष तक स्थानीय उपलब्ध फसलों के अवशेष या शेडनेट द्वारा पौधों के चारों तरफ से ढ़ककर ऊपर से खुला रखना चाहिए।

सिंचाई: सिंचाई की मात्रा उस क्षेत्र की जलवायु एवं मिट्टी की संरचना एवं जलधारण क्षमता पर आधारित होती है। तीन माह तक नए लगाये सकर्स की सिंचाई एक दिन के

अन्तराल पर करनी चाहिए। खजूर के वृक्ष को ज्यादा मात्रा में सिंचाई के पानी की आवश्यकता रहती है। सामान्यतया खजूर के वृक्ष के शीत ऋतु में 12 से 15 दिनों के अन्तराल पर एवं ग्रीष्म ऋतु में एक सप्ताह के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। फूल आने से पूर्व तथा फल बनने की शुरूआत से फल पकने की अवस्था तक समुचित नमी भूमि में होना आवश्यक है। पौधे लगाने के पहले वर्ष 30–40 लीटर, दूसरे वर्ष 50–60 लीटर, तीसरे वर्ष 80–100 लीटर, चौथे वर्ष 100–120 लीटर तथा पाँचवे वर्ष 150–180 लीटर एवं इसके बाद 180–200 लीटर पानी प्रतिदिन देना चाहिए, लेकिन पानी की मात्रा को मौसम के हिसाब से कम ज्यादा करते रहना चाहिए।

इसके अलावा भूमि परीक्षण के आधार पर सूक्ष्म तत्व बोरोन, मैंगनीज तथा लोहे का छिड़काव पौधों को स्वस्थ एवं फलदायक बनाने में लाभप्रद रहता है। खजूर की बढ़वार एवं अच्छे फल हेतु उर्वरकों का प्रयोग ड्रिप सिंचाई के साथ फर्टिगेशन पद्धति द्वारा करना ज्यादा लाभकारी रहता है।

निराई-गुडाई: पौधे के चारों ओर थाले में समय–समय पर निराई–गुड़ाई करते रहना चाहिए।

छंटाई: सिर्फ सूखी पत्तियों की छंटाई करनी चाहिए। निशेचन एवं फलों को उतारने की प्रक्रिया सरलता से हो सके इस हेतु पत्तियों के ऊपर से कांटों की छंटाई करनी चाहिए यह छंटाई सामान्यतः निषेचन से पहले सितम्बर–अक्टूबर माह में की जाती है।

परागण: खजूर का वृक्ष द्विपुष्पी है अर्थात् नर तथा मादा पुष्प अलग–अलग वृक्ष पर पाये जाते हैं। खजूर में प्राकृतिक रूप से परागण की प्रक्रिया कम होती है अतः अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु नर परागकण को मादा पुष्प पर कृत्रिम तरीके से छिड़काव करना जरूरी है। साधारणतया नर पौधे में पहले पुष्प (स्पेथ) आते हैं जिन्हें काट कर छायादार स्थान पर सुखा लेते हैं और प्राप्त पाउडर (परागकण) को कांच के बर्तन में भर कर ठण्डा एवं शुष्क स्थान पर रखें। मादा पौधों में पुष्प आने पर परागकण को रूई के फाहों की सहायता से परागकण किया जाता है इस प्रक्रिया को प्रत्येक पुष्पक्रम (स्पेथ) पर 2–3 दिन तक लगातार करनी चाहिए। नर परागकण को पी वी सी पॉलीनेटर से भी छिड़काव किया जा सकता है नर पुष्प से परागकण सुबह के समय इकठ्ठा कर अगले दिन प्रातः मादा पुष्प पर छिडकाव करने से अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं।

फल गुणवता सुधार: अनुसंधान से यह ज्ञात हुआ है कि फलों का आकार बढ़ाने एवं गुणवत्ता सुधारने हेतु फलों की छंटाई करने की जरूरत रहती है। फलों की छंटाई जब खजूर का फल चने के आकार का होता है तब तीन प्रकार से की जाती है।

1. गुच्छे में से 1/3 भाग हटा देना ।
2. एक गुच्छे में से कुछ फल हटा देना।
3. प्रत्येक आठ पत्तियों पर एक गुच्छा रखने पर उच्च गुणवत्ता।

खाद एवं उर्वरक

खाद एवं उर्वरक का वार्षिक प्रबंध

रोपाई के पश्चात् वर्ष	गोबर की खाद (किग्रा/वृक्ष)	प्रति पेड़ रासायनिक खाद की मात्रा (ग्राम)/प्रति वर्ष		
		नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश
1 से 4 वर्ष तक	25–30	262	138	548
5 वर्ष एवं उसके पश्चात्	40–50	650	650	870

उर्वरक का महीनेवार प्रबंध

माह	1 से 4 वर्ष तक प्रति पौधा/वर्ष (ग्राम)			5 वर्ष एवं उसके पश्चात् प्रति पौधा/वर्ष (ग्राम)		
	यूरिया	डी ए पी	एम ओ पी	यूरिया	डी ए पी	एम ओ पी
जनवरी	–	–	–	–	–	–
फरवरी	55	75	230	105	355	365
मार्च	55	–	–	105	–	–
अप्रैल	55	75	230	105	350	365
मई	–	–	–	–	–	–
जून	–	–	–	–	–	–
जुलाई	60	75	225	110	350	360
अगस्त	60	–	–	110	–	–
सितम्बर	55	–	–	110	–	–
अक्टूबर	55	–	–	110	–	–
नवम्बर	55	75	225	105	355	360
दिसम्बर	–	–	–	–	–	–
कुल	**450**	**300**	**910**	**860**	**1410**	**1450**

फलों के हरे से पीले–लाल पड़ने की अवस्था में गुच्छों पर 1000 पी. पी. एम. इथेफॉन या इथरल रसायन का छिड़काव करने से फलों के आकार एवं वजन में वृद्धि होती है।

खजूर फलों को जलरोधक (वाटर प्रुफ) कागज से अथवा बन्च कवर बैग (U.V. Protected Non Woven Fabric) लगाकर पक्षियों आदि से होने वाले नुकसान से बचाया जा सकता है।

5. प्रमुख रोग तथा उनका प्रबंधन

1. ग्राफियोला लीफ स्पोट: खजूर में प्रमुख रोग ग्राफियोला लीफ स्पोट (रूमट) पाया जाता है। अधिक नमी के वातारण में इस रोग का प्रकोप ज्यादा होता है। यह ग्राफियोला फिनिसिस नामक फफूंद से होती है। पत्तियों की दोनों सतहों पर भूरे रंग के असंख्य धब्बे दिखाई पडते हैं। इस रोग से पूर्ण ग्रसित पत्तियां सूख जाती हैं। इसके नियंत्रण हेतु प्रभावित पत्तियों को काटकर नष्ट कर देना चाहिए। ताम्रयुक्त फंफूदीनाशी या डायथेन एम–45 (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव रोकथाम हेतु काफी प्रभावी होता है।

2. आल्टनेरिया पत्ती धब्बा रोग: यह रोग आल्टनेरिया आलटर्नेटा फफूंद से होती है। पत्तियों की दोनों सतहों पर अनियमित आकार के भूरे काले रंग के धब्बे दिखाई पडते हैं। इसके नियंत्रण हेतु प्रभावित पत्तियों को काटकर जला देना चाहिए। कार्बेन्डेजिम 1 ग्राम + मेन्कोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर परनी में घोल बनाकर 15 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करना चाहिए।

3. ब्लैक स्कोंच (मैडज्नून): यह रोग सिरेटोसिस्टिस पैराडोक्सा, जो कि थैलेविओप्सिस पैराडोक्सा नामक फफूंदी का पूर्ण रूप है के कारण होता है। इस बीमारी के लक्षण सामान्यतयाः पत्तियों पर काले गहरें चकते या स्कोंच, पुष्पक्रम ब्लाईट, हृदय या तने में सड़न तथा बड रोट है। उत्तकों का आंशिक से संपूर्ण परिगलन भी प्रमुख लक्षण हैं। खजूर के सभी आयु के पौधों में यह रोग पाया जाता हैं। खजूर पौध क्षेत्र की स्वच्छता, इस रोग को नियंत्रण रखने का पहला चरण है। प्रभावित पत्तियों तथा पुष्पक्रमों को काटकर तुरंत जला देना चाहिए। काटे गये पत्तियों के भागों में तांबा युक्त फंफूदीनाशक का छिड़काव करना चाहिए। अंतप्रवाही फंफूदीनाशक जैसे कार्बेन्डेजिम, थायोफेनेट मिथाइज 1 ग्राम/लीटर के नियमित छिड़काव रोग के प्रति सुरक्षा को सुनिश्चित करता है। उपरोक्त लक्षणों के गंभीर पाये जाने पर प्रभावित पौधों को खेत से हटाकर क्षेत्र से दूर ले जाकर जला देना चाहिए।

4. बैन्डिग हेड: यह रोग थैलेविओप्सिस पैराडोक्सा एवं बोट्रायोडिपलोडिया थियोब्रामी नामक फंफूदी के कारण होता है। पौधे का मध्य भाग (क्राउन) एक दिशा में मूड जाता है तथा पौधे की वद्धि रूक जाती है। उपरोक्त लक्षण पौधे में पाये जाने पर प्रभावित पौधे के भाग को खेत से हटाकर क्षेत्र से दूर ले जाकर जला देना चाहिए।

5. विल्ट रोग: इस रोग से प्रभावित पत्तियों के मध्य भाग नारंगी पीला रंग दिखाई देने लगता हैं। यह लक्षण बाहर की पत्तियों से अन्दर की पत्तियों की ओर बढ़ता है। आखिरकार सभी पत्तियां पीले रंग में परिवर्तित हो जाती हैं एवं पौधा कुछ दिनों में मर जाता है। अस्वस्थ एवं विपरीत परिस्थितियों में लगे हुए पौधे मुख्यतः जल भराव वाली भूमि में ज्यादा प्रभावित होते हैं। इसके नियंत्रण हेतु प्रभावित पत्तियों को काटकर जला देना चाहिए। टोपसिन एम–3 ग्राम प्रति लीटर या थायोफेनेट मिथाइल 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिन के अन्तराल पर पौधों के चारो ओर ट्रेंच बनाकर देना चाहिए। प्रभावित पौधों के साथ–साथ उसके आस पास के पौधों को भी उपचारित करना चाहिए। कॉपर–ऑक्सीक्लोराइड का 3 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिन के अन्तराल पर तीन छिड़काव करना चाहिए।

6. प्रमुख कीट तथा उनका प्रबंधन

1. दीमक: यह कीट भूमिगत व जमीन के पास तने को खाकर क्षतिग्रस्त कर देता है, छोटे पौधे की वृद्वि रूक जाती है तथा वे मुरझाकर सूख जाते हैं। इसके नियंत्रण हेतु क्लोरोपायरीफॉस (1 मि.ली. प्रति लीटर पानी) के घोल बनाकर थालों में डालकर अच्छी तरह से सिंचाई करनी चाहिए।

फलों की परिपक्वता एवं उत्पादन

गर्मी की ऋतु में 45 से 48 डिग्री सेल्सियस तापमान रहता है जिससे रूतब (पके हुए) फलों में से पानी ऊँचे तापमान के कारण सूखने से छुहारे में परिवर्तित हो जाता है। हमारे देश में खजूर का फल जब डोका अवस्था में होता है तब बरसात के नुकसान से बचाव हेतु ताजे खजूर के फलों को उतार कर उपयोग कर लेना पड़ता है। खजूर में मादा वृक्ष 4–5 वर्ष की उम्र से फल देना प्रारम्भ करता है तथा एक वयस्क वृक्ष प्रति वर्ष औसतन 100 से 150 किलोग्राम ताजा फल का उत्पादन देता है। खजूर का पौधा साधारणतया 60 से 70 वर्ष तक व्यावसायिक उत्पादन देता है।

फसलोतर प्रबन्धन: सुखा खजूर (छुहारा) बनाने हेतु पूर्ण डोका अवस्था के फलों को अच्छी प्रकार धोने के पश्चात् 5–10 मिनट गर्म पानी में 40–50 डिग्री सेंटीग्रेट तापक्रम पर वायु संचारित भट्टी (ओवन) में 70 से 95 घण्टों के लिए सुखातं हैं इन्हें सूर्य की धुप में भी सुखाया जा सकता है। पिण्ड खजूर बनाने हेतु पूर्ण डोका अवस्था अथवा डांग अवस्था के फलों को 20–30 सैकण्ड के लिए उबलते पानी में डुबोने के पश्चात् 38–40 डिग्री से. तापक्रम पर वायु संचारित भट्टी (ओवन) में रखते हैं। छुहारों को 1 से 11 डिग्री सेंटीग्रेट तापक्रम एवं 65–70 प्रतिशत सापेक्षित आर्द्रता में 13 महीनों तक भण्डारित किया जा सकता हैं।

10

शुष्क क्षेत्र में चने की उन्नत कृषि तकनीकों द्वारा अधिक उत्पादन

भगवान सिंह[1], अनुराग सक्सेना[2] एवं सोमा श्रीवास्तव[3]

1. प्रस्तावना
2. चने उत्पादन की उन्नत तकनीकियाँ
3. चने के प्रमुख कीट एवं रोग और उनका प्रबंधन

1. प्रस्तावना

चना, भारतीय खान–पान के प्रमुख दलहनी फसलों में से है। चना का प्रयोग भारत में सदियों से हो रहा हैं। इसे सीधे प्रयोग करने के अलावा दाल और उससे बने उत्पादों के रूप में भी इसका प्रयोग होता हैं। इसका स्वाद तो अलग और अनोखा होता ही है, साथ ही इसका प्रयोग शक्तिवर्धक माना जाता है। इसे अंकुरित करके भी खाया जाता है, ऐसे कई कारण हैं जिनसे चना स्वास्थ्यवर्धक माना जाता हैं। चना प्राकृतिक रूप से वजन घटाने में सहायक माना गया है। ऐसा इसमें फाइबर (रेशा) की अधिकता के कारण होता है। शाकाहारी लोगों के लिए यह प्रोटीन का भी बेहतर स्त्रोत है। चने में खनिज लवण के रूप में मैंगनीज काफी मात्रा में होता है। इसके अलावा इसमें जरूरी पोषक तत्व जैसे थायमीन, मैगनिशियम, पोटेशियम और फॉस्फोरस भी पाया जाता है। चना का ग्लाइसेमिक इंडेक्स कम होता है। इसमें घुलनशील फाइबर, उच्च मात्रा में प्रोटीन और लौह तत्व होता है। इस कारण से यह डायबिटीज (मधुमेह) के रोगियों के लिए भी काफी फायदेमंद होता है। इसके कारण रक्त में ग्लूकोज (शर्करा) बहुत धीमें–धीमें बढ़ता है। चना महिलाओं में हार्मोन का स्तर नियमित रखता है। इससे कैंसर और ऑस्टियोपोरोसिस का खतरा कम हो जाता है। चना में आयरन इतनी मात्रा में मौजूद होता है कि यह शरीर की आयरन की जरूरत को आसानी से पूरा करता है और एनीमिया (रक्ताल्पता) होने से रोकता है। बच्चे और महिलाओं में एनीमिया का खतरा अत्यधिक होता है। इसी कारण से उन्हें नियमित चना का सेवन करने के लिए कहा जाता है। चना रक्त वाहिकाओं को सामान्य करता है जिससे हाइपरटेंशन का खतरा कम होता है। चना में फाइबर की अधिक मात्रा के कारण यह पाचन तंत्र और आंत को भी बेहतर बनाये रखता है। फाइबर न सिर्फ भूख को नियन्त्रित करते हैं बल्कि लंबे समय तक पेट को भरा भी रखते हैं। इससे पाचन संबंधी समस्याएं कम होती हैं। इसके पोषक तत्व कब्ज को भी दूर करते हैं। विशेषज्ञों के अनुसार काला चना रोज खाने से यह कई प्रकार के हृदय संबंधी समस्याओं और कॉलेस्ट्रॉल को कम कर देता है।

चना रबी ऋतु की एक महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। राजस्थान में इसकी खेती असिंचित एवं सिंचित दोनों क्षेत्रों में की जाती है। राजस्थान में चने की खेती लगभग 12.56 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में की जाती है, जो कि राज्य के कुल दलहन क्षेत्र का लगभग 37.35 प्रतिशत है। राज्य में इसका उत्पादन 9.11 लाख टन है जो कि कुल दलहन उत्पादन का 46.72 प्रतिशत है। देश के कुल चने के उत्पादन का 9–10 प्रतिशत राजस्थान में होता है। राज्य में चने की औसत उपज 725 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर (2014–15) है। जो कि उत्पादन क्षमता से काफी कम है। चने की उपज को बढ़ाने की काफी गुजांइश है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के अधीन अनुसंधान संस्थानों एवं राज्यों के कृषि विश्वविद्यालयों ने चने की उन्नत तकनीकियाँ विकसित की हैं, जिनको अपना कर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

[1–3]भा.कृ.अनु.प.–केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)। ई–मेलः singhbhagwan776@gmail.com; Mobile: 94612-90535

2. चने उत्पादन की उन्नत तकनीकियाँ

उन्नत किस्मों का प्रयोग: चने की फसल से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए उन्नत किस्मों का चुनाव करना चाहिए। अनुसंधान संस्थानों एवं कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा चने की अनेक उन्नत किस्में विकसित की गई है। जिनका विवरण नीचे दिया गया है।

भूमि एवं उसकी तैयारी: चने की खेती के लिए हल्की दोमट या दोमट मिट्टी अच्छी होती है। भूमि में जल निकास की उपयुक्त व्यवस्था होनी चाहिये। भूमि में अधिक क्षारीयता नहीं होनी चाहिये। प्रथम जुताई मिट्टी पलटने वाले हल या डिस्क हैरो से करनी चाहिये। इसके पश्चात् एक क्रास जुताई हैरों से करके पाटा लगाकर भूमि समतल कर देनी चाहिये। फसल को दीमक एवं कटवर्म के प्रकोप से बचाने के लिए अन्तिम जुताई के समय हैप्टाक्लोर (4 प्रतिशत) या क्यूंनालफॉस (1.5 प्रतिशत) या मिथाइल पैराथियोन (2 प्रतिशत) या एन्डोसल्फॉन की (1.5 प्रतिशत) चूर्ण की 25 कि.ग्रा. मात्रा को प्रति हैक्टेयर की दर से मिट्टी में अच्छी प्रकार मिला देनी चाहिये।

बीज उपचार: बीज को बोने से पहले उपचारित करके बोना चाहिए जिससे कीड़े एवं बीमारियों के प्रकोप से बचाया जा सके। बीज को उपचारित करते समय ध्यान रखना चाहिये कि सर्वप्रथम उसे फफूंदनाशी, फिर कीटनाशी तथा अन्त में

किस्म का नाम	पकने की अवधि (दिनों में)	पैदावार (क्वि./है.)	विशेषताएं
सी 235	140–160	15–20	दानों का आकार मध्यम व रंग कत्थई, फूलों का रंग बैंगनी, पौधा मध्यम ऊँचाई का झाड़ीनुमा, फलियाँ मध्यम एवं बीज छोटा, सिंचित व असिंचित दोनों क्षेत्रों के लिए उपयुक्त एवं झुलसा रोग का प्रकोप कम।
आरएसजी 44	145–150	20–25	दाना पीला, 80–85 दिनों में फूल, सिंचित व असिंचित दोनों क्षेत्रों के लिए उपयुक्त एवं उखटा रोग से कम प्रभावित।
जीएनजी 663	145–150	20–25	पौधों की ऊँचाई मध्यम, दानों का रंग भूरा व गुलाबी तथा दाने सुडोल, पौधे झाड़ीनुमा, फूलों का रंग बैंगनी व गुलाबी।
आरएसजी 888	130–135	20–35	अर्ध सीधे दो फलियां वाली किस्म, सूखा सहन करने की क्षमता, उखटा रोग रोधी, शुष्क जड़ गलन व सूत्र क्रमी रोधी।
दाहोद येलो	80–105	20–25	पौधों की ऊँचाई 35–40 से.मी., फलियां अण्डाकार व हल्के रंग की तथा एक पौधे पर 70–80 फलियां।
सीएसजेके–6	120–130	18–20	काबुली चने की अच्छी किस्म, पौधों की ऊँचाई 38–40 से.मी., प्रति पौधा फलियों 35–40, 1000 दानों का वजन 315 ग्राम।
पूसा–362	140–150	22–24	मोटे दाने एवं विल्ट के प्रति सहनशीलता।

जीएनजी 1292	140–150	24–26	पौधों की ऊँचाई 65–70 से.मी., मोटे दाने, विल्ट, जड़ गलन व झुलसा रोग प्रति सहनशीलता।
सीएसजेके–21	130–140	18–20	पौधों की ऊँचाई 35–40 से.मी., फलियां की संख्या प्रति पौधा 35–40, 1000 दानों का वजन 256 ग्राम तथा काबुली चने की अच्छी किस्म।
विशाल फूले	112	20–21	बारानी क्षेत्र के लिए शीघ्र पकने वाली तथा विल्ट प्रतिरोधी किस्म।
सीएसजेडी–884 (आकाश)	130–135	15–18	बरानी क्षेत्र के उत्तम, पौधों की ऊँचाई 50–60 से.मी., शुष्क जड़ गलन के लिये मध्यम प्रतिरोधी, 100 दानों का वजन 15.5 ग्राम
आरएसजी 973	125–130	16–17	सामान्य व सिंचित क्षेत्रों में बुवाई हेतु उपयुक्त, सूखा रोधी, मध्यम पकने वाली, अधिक शाखाओं वाली, विल्ट रोग रोधी, जड़ गलन रोग प्रतिरोधी एवं फली छेदक रोधी, मौजेक रोग प्रतिरोधी किस्म।
आरएसजी–807	130–135	23–24	मध्यम पकने वाली, अधिक शाखाओं वाली, अधिक फलियों वाली, जड़ गलन, फली छेदक व सूत्र कृमि रोग हेतु मध्यम प्रतिरोधी किस्म है।
आरजीसी–945	125–130	17–18	सघन शाखाओं, देरी से बुवाई व सिंचित क्षेत्रों हेतु उपयुक्त किस्म, विल्ट, जड़ गलन रोग प्रतिरोधी, फली छेदक व निमेटोड रोग हेतु मध्यम प्रतिरोधी।
आरएसीजी–931	130–140	22–24	मध्यम अवधि में पकने वाली, सघन शाखाओं युक्त दो फलियों वाली किस्म, पर्याप्त नमी वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त, जड़ गलन, विल्ट एवं फली छेदक के हेतु मध्यम प्रतिरोधी व सिंचित क्षेत्रों के लिये उपयुक्त।

राजोबियम कल्चर सें उपचारित करें। जड़ गलन व उखटा रोग की रोकथाम के लिए बीज को कार्बेन्डाजिम या मैन्कोजेब या थाइरम की 1.5 से 2 ग्राम मात्रा द्वारा प्रति कि. ग्रा. बीज दर से उपचारित करें। दीमक एवं अन्य भूमिगत कीटों की रोकथाम हेतु क्लोरोपाइरीफोस 20 ईसी या एन्डोसल्फॉन 35 ईसी की 8 मिलीलीटर मात्रा प्रति किलो बीज दर से उपचारित करके बुवाई करनी चाहिये। अन्त में बीज को राइजोबियम कल्चर के तीन एवं फास्फोरस घुलनशील जीवाणु के तीन पैकेटों द्वारा एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिए आवश्यक बीज की मात्रा को उपचारित करके बुवाई करनी चाहिये। बीज को उपचारित करने के लिए एक लीटर पानी में 250 ग्राम गुड़ को गर्म करके ठंडा होने पर उसमें राइजोबियम कल्चर व फास्फोरस घुलनशील जीवाणु को अच्छी प्रकार मिलाकर उसमें बीज उपचारित करना चाहिये। उपचारित बीज को छाया में सुखाकर शीघ्र बुवाई कर देनी चाहिये।

बीज एवं उसकी बुवाई: बुवाई के समय का फसल की उपज पर बहुत प्रभाव पड़ता है। चने की असिचिंत क्षेत्रों में बुवाई अक्टूबर के प्रथम पखवाड़े में कर देनी चाहिये। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा हो वहाँ पर बुवाई 30 अक्टूबर तक अवश्य कर देनी चाहिये। फसल से अधिक पैदावार प्राप्त

करने के लिए बारानी खेती के लिए 80 कि.ग्रा. तथा सिंचित क्षेत्र के लिए 60 कि.ग्रा. बीज की मात्रा प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होती है। बारानी फसल के लिए बीज की गहराई 7 से 10 से.मी. तथा सिंचित क्षेत्र के लिए बीज की बुवाई 5 से 7 से. मी. गहराई पर करनी चाहिये। फसल की बुवाई पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 से 50 से.मी. पर करनी चाहिये।

खाद एवं उर्वरक: चने की फसल दलहनी होने के कारण इसको नाइट्रोजन की कम आवश्यकता होती है क्योंकि चने के पौधों की जड़ों में ग्रन्थियां पाई जाती है। ग्रन्थियों में उपस्थित जीवाणु वातावरण की नाइट्रोजन का जड़ों में स्थिरीकरण करके पौधे की नाइट्रोजन की काफी मात्रा की आवश्यकता की पूर्ति कर देती है। चने कि अधिक उपज हेतु 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर तथा 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टेयर की दर से देना चाहिये। नाइट्रोजन की मात्रा यूरिया या डाई अमोनियम फास्फेट (डीएपी) तथा गोबर खाद व कम्पोस्ट खाद द्वारा दी जा सकती है। जबकि फास्फोरस की आपूर्ति सिंगल सुपर फास्फेट या डीएपी या गोबर व कम्पोस्ट खाद द्वारा की जा सकती है।

सिंचाई: चने की अधिकतर खेती बारानी क्षेत्रों में संचित नमी में की जाती है। यदि सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो नमी की कमी होने की स्थिति में एक या दो सिंचाई की जा सकती है। पहली सिंचाई 40 से 50 दिनों बाद तथा दूसरी सिंचाई फलियां आने पर की जानी चाहिये। सिचिंत क्षेत्रों में चने की खेती के लिए 3 से 4 सिंचाई पर्याप्त होती है। बुवाई से पहले पलेवा करके फसल की बुवाई करनी चाहिये। इसके पश्चात् फसल की गुड़ाई करने के पश्चात् बुवाई के 35–40 दिन बाद प्रथम, 70–80 दिन बाद दूसरी एवं 105–110 दिनों बाद अन्तिम सिंचाई करनी चाहिये। यदि बुवाई के बाद दो ही सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो प्रथम बुवाई के 40–50 दिनों बाद तथा द्वितीय 80–85 दिनों बाद करनी चाहिये। यदि बुवाई के बाद एक ही सिंचाई करने योग्य पानी उपलब्ध हो तो बुवाई के 60–65 दिनों बाद सिंचाई करने को प्राथमिकता देनी चाहिये।

निराई-गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण: चने की फसल में अनेक प्रकार के खरपतवार जैसे बथुआ, खरतुआ, मोरवा, प्याजी, मोथा, दूब इत्यादि उगते हैं। ये खरपतवार फसल के पौधों के साथ पोषक तत्वों, नमी, स्थान एवं प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करके उपज को प्रभावित करते हैं। खरपतवारों द्वारा होने वाली हानि को रोकने के लिए समय पर नियंत्रण करना बहुत आवश्यक है। चने की फसल में दो बार गुड़ाई करना पर्याप्त होता है। प्रथम गुड़ाई फसल बुवाई के 30–35 दिन पश्चात् व दूसरी 50–55 दिनों बाद करनी चाहिये। यदि मजदूरों की उपलब्धता न हो तो फसल बुवाई के तुरन्त पश्चात् पैन्ड़ीमैथालीन की 2.50 लीटर मात्रा को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर खेत में समान रूप से मशीन द्वारा छिड़काव करना चाहिये। फिर बुवाई के 30–35 दिनों बाद एक गुड़ाई कर देनी चाहिये। इस प्रकार चने की फसल में खरपतवारों द्वारा होने वाली हानि की रोकथाम की जा सकती है।

3. चने के प्रमुख कीट एवं रोग और उनका प्रबंधन:

चने की फसल में अनेक प्रकार के कीटों एवं बीमारियों का प्रकोप होता है जिनका उचित समय पर नियंत्रण करना बहुत आवश्यक है।

दीमक, कटवर्म एवं वायर वर्म: चने की फसल को दीमक, कटवर्म एवं वायर वर्म काफी नुकसान पहुँचाते हैं। इनके प्रकाप से बचने के लिए भूमि को बुवाई से पहले एन्डोसल्फॉन, क्यूनालफोस या क्लोरोपाइरीफोस से उपचारित कर लेना चाहिए। भूमि को उपचारित किया गया है तथा बीज को क्लोरोपाइरीफोस कीटनाशी द्वारा उपचारित किया गया है तो भूमिगत कीटों द्वारा होने वाली हानि की रोकथाम की जा सकती है। यदि खड़ी फसल में दीमक का प्रकोप हो तो क्लोरोपाइरीफोस 20 ईसी या एन्डोसल्फान 35 ईसी की 2 से 3 लीटर मात्रा को प्रति हैक्टेयर की दर से सिंचाई के साथ देनी चाहिये। ध्यान रहे दीमक के नियन्त्रण हेतु कीटनाशी का जड़ों तक पहुचँना बहुत आवश्यक है। कटवर्म की लटें ढेलों के नीचे छिपी होती है तथा रात में पौधों को जड़ों के पास काटकर फसल को नुकसान पहुँचाती है। कटवर्म के नियंत्रण हेतु मिथाइल पैराथियोन 2 प्रतिशत या क्यूनालफोस 1.50 प्रतिशत या एन्डोसल्फॉन् 4 प्रतिशत चूर्ण की 25 किलोग्राम मात्रा को प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव शाम के समय करना चाहिये।

फली छेदक: यह कीट चने की फसल को काफी हानि पहुँचाता है। यह कीट प्रारम्भिक अवस्था में पत्तियों को खाकर फसल को हानि पहुँचाता है तथा फली आने पर उसमें छेद बनाकर अन्दर घुस जाता है तथा दाने को खाकर फली को खोखला बना देता है। इस कीट के नियंत्रण हेतु फसल में फूल आने से पहले तथा फली लगने के बाद एन्डोसल्फॉन 4 प्रतिशत या क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत या मिथाइल पैराथियोन 2 प्रतिशत चूर्ण की 20–25 कि.ग्रा. मात्रा को प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकनी चाहिये। पानी की उपलब्धता होने पर मोनोक्रोटाफॉस 35 ईसी या क्यूनॉलफोस 25 ईसी की 1.25 लीटर मात्रा को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से फसल में फूल आने के समय छिड़काव करना चाहिये।

झुलसा रोग (ब्लाइट): इस रोग का संचारण बीज तथा वायु दोनों के द्वारा होता है। यह बीमारी एक फफूंद के कारण होती है। इस बीमारी के कारण पौधें की जड़ों को छोड़कर तने, पत्तियों एवं फलियों पर छोटे गोल तथा भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। पौधे की आरम्भिक अवस्था में जमीन के पास तने पर इसके लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई देते है। पहले प्रभावित पौधे पीले व फिर भूरे रंग के हो जाते हैं तथा अन्ततः पौधा सूखकर मर जाता है। यह रोग अधिक वर्षा तथा अधिक नमी के वातावरण में भी शीघ्रता से फैलता है। इस रोग के लक्षण दिखाई देने पर मैन्कोजेब नामक फफूंदनाशी की 1 कि.ग्रा. या घुलनशील गन्धक की 1 कि. ग्रा. या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की 1.30 कि.ग्रा. मात्रा को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिये। 10 दिनों के अन्तर पर 3–4 छिड़काव करने पर्याप्त होते हैं।

उखटा रोग (विल्ट): यह रोग बीज व मृदा द्वारा फैलता है। इस बीमारी के लक्षण जल्दी बुवाई की गयी फसल में बुवाई के 20–25 दिनों बाद स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते है।

फली छेदक

झुलसा रोग

देरी से बोई गयी फसल में रोग के लक्षण फरवरी व मार्च में दिखाई देते है। पहले प्रभावित पौधे पीले रंग के हो जाते है तथा नीचे से ऊपर की ओर पत्तियाँ सूखने लगती है। अन्ततः पौधा सूखकर मर जाता है। इस रोग के नियन्त्रण हेतु भूमि में नमी की कमी नही होनी चाहिये। यदि सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो बीमारी के लक्षण दिखाई देते ही सिंचाई कर देनी चाहिये। इसकी रोकथाम के लिए गहरी जुताई देर से बुवाई से तथा उचित फसल चक्र अपनाना चाहिए। रोग रोधी किस्मों जैसे आरएसजी 888 तथा सी 235 की बुवाई करनी चाहिये। बीज को बोने से पहले 1 ग्राम कार्बनडाजिम दवा प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके बोए।

तना विगलन: यह रोग भूमि में आवश्यकता से अधिक नमी के कारण फलता है। इस रोग के कारण पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। प्रभावित पौधों के तने तल के पास से सड़ कर मर जाते हैं। तने के इस भाग के पास सफेद रंग की फफूँद आसानी से देखी जा सकती है। इसकी रोकथाम के लिए बीज को थाइरम नामक फफूँद नाशक 3 ग्राम प्रति किलो बीज से उपचारित कर बोयें।

जड़ गलन: इसमें पौधों के डन्ठल तथा पत्तियां पीली पड़ कर मुरझा जाती हैं। तने के ऊपर भूरे हरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। जिससे नीचे का तना तथा जड़ गल जाती है। जिन पर गुलाबी रंग की फफूँद दिखाई पड़ती है तथा पौधे मरने लगते हैं। इसकी रोकथाम के लिए गर्मी में गहरी जुताई करें जिससे तेज तापमान में रोग के बीजाणु सीधे सम्पर्क में आकर नष्ट हो जाए। दो तीन वर्षों का फसल चक्र अपनायें तथा बीजों को थाइरम या कार्बन्डाजिम दवा से 2 ग्राम प्रति किलो के हिसाब से उपचारित कर बुवाई करें।

किट्ट (रस्ट): इस बीमारी के लक्षण फरवरी व मार्च में दिखाई देते हैं। पत्तियों की ऊपरी सतह पर फलियों पर्णवृतों तथा टहनियों पर हल्के भूरे काले रंग के उभरे हुए चकत्ते बन जाते हैं। इस रोग के लक्षण दिखाई देने पर मेन्कोजेब नामक फफूंदनाशी की 1 कि.ग्रा. या घुलनशील गन्धक की 1 कि.ग्रा. या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की 1.30 कि.ग्रा. मात्रा को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिये। 10 दिनों के अन्तर पर 3–4 छिड़काव करने पर्याप्त होते हैं।

पाले से फसल का बचाव: चने की फसल में पाले के प्रभाव के कारण काफी क्षति हो जाती है। पाले के पड़ने की संम्भावना दिसम्बर–जनवरी में अधिक होती है। पाले के प्रभाव से फसल को बचाने के लिए फसल में गन्धक के तेजाब की 0.1 प्रतिशत मात्रा यानि एक लीटर गन्धक के तेजाब को 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिये। पाला पड़ने की सम्भावना होने पर खेत के चारों और धुआं करना भी लाभदायक रहता है।

फसल चक्र: भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने एवं फसल से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए उचित फसल चक्र की विशेष भूमिका होती है। असिंचित क्षेत्र में पड़त–चना (एक वर्षीय), पड़त–चना–पड़त–सरसों (द्विवर्षीय), तथा पड़त–चना–पड़त–सरसों–पड़त–चना (तीन वर्षीय) फसल चक्र अपनाये जा सकते हैं।

फसल की कटाई एवं गहाई: फसल जब अच्छी प्रकार पक जाये तो कटाई करनी चाहिये। जब पत्तियाँ व फलियाँ पीली व भूरे रंग की हो जाये तथा पत्तियाँ गिरने लगे एवं दाने सख्त हो जाये तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिये। कटाई की गई फसल जब अच्छी प्रकार सूख जाये तो थ्रैशर द्वारा दाने को भूसे से अलग कर लेना चाहिये तथा अच्छी प्रकार सुखाकर सुरक्षित स्थान पर भण्डारित कर लेना चाहिये।

उपज एवं आर्थिक लाभ: उन्नत तकनीकियों का प्रयोग कर उगायी गयी फसल द्वारा 20 से 22 क्विंटल उपज प्रति हैक्टेयर प्राप्त की जा सकती है। चने की एक हैक्टेयर क्षेत्र में फसल उगाने के लिए लगभग 20–25 हजार का खर्च आता है। यदि चने का बाजार भाव 4000 रूपये प्रति क्विंटल हो तो प्रति हैक्टेयर लगभग 45–50 हजार रूपये का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

4. चना की उन्नत तकनीकों के सफल प्रदर्शन

उपरोक्त चना की उन्नत तकनीकों/कृषि कियाओं को सामिल करते हुये केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर के गोद लिये गए गाँव मान सागर एवं गोविंदपुरा, बाड़मेर के धोक, एवं जैसलमेर के दीदू, दामोदरा, साकडिया तथा देदा में चना की उन्नत किस्मों के प्रदर्शन आयोजित किये गये।

सन् 2014–15 में चना की उन्नत किस्म सीएसजेके–6, सीएसजेके–21, आरएसजी–963 के 24 प्रदर्शन आयोजित किये गये। इन प्रदर्शनों में चना की उन्नत तकनीकों जैसे उन्नत किस्में, बीजोपचार, बीज दर, बुवाई की विधि, खरपतवार नियंत्रण, खाद एवं कीट एवं रोग नियंत्रण आदि को प्रदर्शन में शामिल किया गया। चना की उन्नत किस्में सीएसजेके–6, सीएसजेके–21, आरएसजी–963 की औसत उपज 1320, 1225 एवं 1390 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर प्राप्त हुई, जबकि स्थानीय किस्म की खेती पारम्परिक विधियों द्वारा करने से औसत उपज 1120 कि.ग्रा प्रति हैक्टेयर प्राप्त की गई। इस प्रकार उन्नत किस्म सीएसजेके–6, सीएसजेके–21, आरएसजी–963 के प्रयोग से क्रमशः 17.85, 9.37 एवं 24.01 प्रतिशत उपज की वृद्धि हुई (तालिका–1)।

तालिका–1 चना की उन्नत कृषि क्रियाओं का उपज पर प्रभाव

वर्ष	किस्म	प्रदर्शनों की संख्या	औसत उपज (कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर)		
			उन्नत कृषि क्रियाऐं	किसान की परम्परागत कृषि क्रियाऐं	उपज में वृद्धि %
2014–15	सीएसजेके–6	13	1320	1120	17.85
	सीएसजेके–21	2	1225	1120	9.37
	आरएसजी–963	9	1390	1120	24.01
2015–16	जीएनजी 1581	21	2135	1560	36.85
कुल औसत		**45**	**1517.50**	**1230**	**23.37**

सन् 2015–16 में चना की उन्नत किस्म जीएनजी 1581 के 21 प्रदर्शन आयोजित किये गये। इन प्रदर्शनों में चना की उन्नत तकनीकों जैसे उन्नत किस्में, बीजोपचार, बीज दर, बुवाई की विधि, खरपतवार नियंत्रण, खाद एवं कीट एवं रोग नियंत्रण आदि को प्रदर्शन में शामिल किया गया। चना की उन्नत किस्म जीएनजी 1581 की औसत उपज 2135 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर प्राप्त हुई, जबकि स्थानीय किस्म की खेती पारम्परिक विधियों द्वारा करने से औसत उपज 1560 कि.ग्रा प्रति हैक्टेयर प्राप्त की गई। इस प्रकार उन्नत किस्म जीएनजी 1581 के प्रयोग से 36.85 प्रतिशत उपज की वृद्धि हुई (तालिका–1)।

2014–15 से 2015–16 तक चना की उन्नत किस्मों सीएसजेके–6, सीएसजेके–21, आरएसजी–963 एवं जीएनजी 1581 के 45 प्रदर्शन आयोजित किये गये। उन्नत कृषि क्रियाओं की खेती में औसत रू. 31043 का कुल खर्चा आया तथा रू. 78266 की कुल आमदनी हुई जिससे रू. 47223 प्रति हैक्टेयर का शुद्ध लाभ हुआ। जबकि किसान कि कृषि क्रियाओं से शुद्ध लाभ रू. 38354 प्राप्त हुआ (तालिका 2)।

तालिका–2 चना की उन्नत कृषि क्रियाओं से शुद्ध लाभ

वर्ष	किस्म	कुल खर्च (रु./हैक्टेयर)		कुल आय (रु./हैक्टेयर)		शुद्ध लाभ (रु./हैक्टेयर)		लाभ लागत अनुपात	
		उन्नत कृषि क्रियाऐं	किसान की परम्परागत कृषि क्रियाऐं	उन्नत कृषि क्रियाऐं	किसान की परम्परागत कृषि क्रियाऐं	उन्नत कृषि क्रियाऐं	किसान की परम्परागत कृषि क्रियाऐं	उन्नत कृषि क्रियाऐं	किसान की परम्परागत कृषि क्रियाऐं
2014–15	सीएसजेके–6	31290	28980	78750	67585	47460	38605	1.52	1.33
	सीएसजेके–21	31290	28980	73420	67585	42130	38605	1.35	1.33
	आरएसजी–963	31290	28980	83170	67585	51880	38605	1.65	1.33
2015–16	जीएनजी 1581	30300	27800	77725	65400	47425	37600	1.56	1.35
	कुल औसत	**31043**	**28685**	**78266**	**67039**	**47223**	**38354**	**1.52**	**1.33**

11

बारानी क्षेत्रों में फालसा की वैज्ञानिक खेती से अधिक लाभ कमाना

मोती लाल मीणा[1], धीरज सिंह[2] एवं चन्दन कुमार[3]

1. प्रस्तावना
2. फालसा के खेती की विधि
3. फालसा के प्रमुख कीट व रोग

1. प्रस्तावना

फालसा का पौधा झाड़ीनुमा होता है। इसे बंगाली भाषा में धामिनी भी कहते हैं। इसका फल हल्का अम्लीय प्रकृति का होता हैं जिसमें विटामिन ए एवं विटामिन सी प्रचुर मात्रा में पायी जाती हैं। इसके फल के सेवन से बुखार, कब्ज, हृदय रोग, खून की खराबी व सूजन में लाभदायक होता है। फल का उपयोग रस व स्कवैश बनाने में भी करते हैं लेकिन फल स्वादिष्ट होने के कारण करीब 80 प्रतिशत उपयोग ताजा खाने में होता है। पेड़ की छाल का चिपचिपा पदार्थ (गोंद) गुड़ बनाते समय गन्ने के रस के निर्मलीकरण काम में लाया जाता है।

वितरण एवं उत्पत्ति स्थान

फालसा की उत्पत्ति स्थान भारत है। वैदिक ग्रन्थों में इसके औषधीय गुणों का वर्णन मिलता है। इसके पौधे जंगली रूप में उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश पंजाब, बिहार, पश्चिम बंगाल के पहाड़ी क्षेत्र तथा मालाबार (केरल) में उगता है। फालसा की बागवानी उत्तर प्रदेश, पंजाब हरियाणा, मध्य प्रदेश राजस्थान व आन्ध्र प्रदेश के शहरी क्षेत्रों के आस–पास ही की जाती है। क्योंकि इसके फलों की भण्डारण क्षमता कम होती है।

वानस्पतिक विवरण

यह टिलिएसी कुल का पौधा है। इस कुल मे कुल 18 वंश व 400 जातियां है। वंश ग्रिविया के अन्तर्गत 140 जातियाँ है जिसमें 40 जातियाँ भारत में पायी जाती है। फालसा (ग्रिविया सबइनेइक्वेलिस) के अलावा ग्रिविया एलास्टिका किस्म वेस्टीटा जंगली रूप में कम ऊँची पहाडियों एवं पहाड़ों के तलहटी में पायी जाती है। इसके अलावा ग्रिविया वंश के अन्तर्गत ग्रिविया गलेब्रा, ग्रि. माइकोकस, ग्रि. आप्टिवा, ग्रि. टिलिफोलिया, ग्रि. बिलोसा आदि जातियाँ भी आती है। फालसा का फल अण्ठिल होता है। खाने में फल का स्वाद खटासयुक्त मीठा होता है। इसके फूल पीले रंग के उभयलिंगी होते है। फूलों के खिलने पर तापमान व आर्द्रता का अधिक प्रभाव पड़ता है। परागकण बडे (6.13 माइक्रोन्स) व अधिक जनन क्षमता (70–75 प्रतिशत) वाले होते हैं। फल का खाद्य भाग गूदा होता है। जो पूरे फल का 69 प्रतिशत होता है।

2. फालसा के खेती की विधि

भूमि व जलवायु: फालसा के लिए जल निकास युक्त दोमट मिट्टी उपयुक्त रहती है। इसकी खेती कंकड़–पत्थर युक्त, क्षारीय व कमजोर भूमि में भी की जा सकती है। जल भराव वाले क्षेत्रों में इसकी खेती नहीं हो पाती है। कमजोर भूमि में इसका उत्पादन कम होता है। फालसा उश्ण जलवायु का पौधा है। इसकी ग्रिविया एलास्टिका किस्म वेस्टिटा पहाड़ों की तलहटी में प्राकृतिक रूप से उगती है। जबकि अन्य जातियाँ मैदानी भागों में सफलतापूर्वक उगायी जा सकती है। इसका पौधा पर्णपती होता हैं। इसलिए पाले का असर नहीं होता है। यह सूखा प्रतिरोधी भी है। जिससे इसकी बागवानी बरानी क्षेत्रों में भी की जा सकती है। इसके पौधे समुद्रतटीय आर्द्र स्थानों पर भी उगाये जा सकते है। पुष्पन के समय शुष्क मौसम अच्छा रहता है। तथा गर्म जलवायु

[1–3]कृषि विज्ञान केन्द्र, काजरी, पाली–मारवाड़ (राजस्थान)। ई–मेलः mlmeenacazri@gmail.com; Mobile: 94148-56397

फलों की गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लिए आवश्यक है। ऐसे क्षेत्र जहाँ पर ठंडक के मौसम में ठंड कम पड़ती है वहाँ पर फालसा के पौधे की पत्तियाँ नही गिरती है। जिससे उत्पादन कम व घटिया किस्म का मिलता है।

पादप रोपण: फालसा के पौधे को फरवरी माह में लगाना सर्वोत्तम रहता है। क्योंकि इस समय पौधा सुषुप्तावस्था में रहता हैं तथा पौधे को मिट्टी के पिन्डी के बिना भी नर्सरी से निकाल कर यथास्थान पर लगाया जा सकता है। जुलाई–अगस्त में पौधों का रोपण पिन्ड सहित करते हैं। रोपएस हेतु 8–10 माह पुराना पौधा अच्छा रहता है। पौधा का रोपण स्थाई स्थान पर 3 मी. x 3 मी. के फासले पर करते हैं। इसके पौधे को सघन बागवानी के रूप में लगाकर 20–30 प्रतिशत की अतिरिक्त आमदनी प्राप्त कर सकते है। सघन बागवानी हेतु पौधों को सुयक्त पंक्ति पद्धति में लगाते हैं इसके लिए दो पौधों को एक साथ 0.60 मीटर की दूरी पर लगाते है इसके बाद दूसरा जोड़ा 3.0 मीटर छोड़कर लगाते हैं। इस प्रकार 3.0 मीटर के फासले पर 2–2 पौधे 0.60 मीटर की दूरी पर लगाते है, पौध लगाने से पूर्व 60 घन सेमी. के आकार का गड्ढ़ा खोदते हैं। जिससे मिट्टी व सड़ी गोबर की खाद के मिश्रण को भरते हैं। पौध लगाने के उपरान्त तुरन्त पानी देते हैं।

पौध प्रसारण: आमतौर पर फालसा का प्रवर्धन बीज द्वारा किया जाता हैं। इसके लिए ताजे पके हुए फलों से बीज को मई–जून में निकालकर जुलाई–अगस्त के माह में नर्सरी में बुवाई करते हैं। बीज का जमाव 15–20 दिनों में होता है। बुवाई के 6–7 माह बाद पौधा रोपाई योग्य हो जाता है। बीज की बुवाई नर्सरी में लाइन से लाइन की दूरी 25 सेमी तथा बीज से बीज की दूरी 5 सेमी रखते है। बीज से तैयार पौधों में सत्यता काफी हद तक रहती है। बीज की जमााव क्षमता 3 माह तक होती है।

कटिंग: फालसा का प्रवर्धन सख्त साख कलम द्वारा भी कर सकते हैं। इसके लिए पकी शाखा से कलम काटकर 3000 पी.पी.एम. इन्डोल ब्यूटारिक अम्ल में 2–3 मिनट तक उपचार करके जुलाई–अगस्त के माह में लगाते हैं। कलम को पौधे की सुषुप्तावस्था में भी लगा सकते हैं, उपचारित करके कलम लगाने से जड़े शीघ्र व अधिक निकलती है।

लेयरिंग: फालसा का पौध प्रसारण गूटी बांध कर भी कर सकते हैं। गूटी के लिए चयनित शाखा को 5000 पी.पी.एम. इन्डोल ब्यूटारिक अम्ल या एन.ए.ए. से उपचार करने पर शत–प्रतिशत सफलता मिलती है। दाब तथा ठूँठ प्ररोह दाब द्वारा भी पौधे तैयार किये जा सकते हैं।

ग्राफ्टिंग: मृदु शाख कलम द्वारा भी पौधे तैयार किये जा सकते हैं। इसके लिए मूलवृन्त के पौधे की पत्तियाँ ग्राफ्टिंग से 10 दिन पहले तोड़ लेते हैं इसके बाद एक वर्ष पुराने मूलवृन्त पर ग्राफ्टिंग करते हैं। मृदु शाख कलम से भी शत–प्रतिशत सफलता मिलती है।

किस्में: सामान्यतः फालसा की कोई अनुमोदित किस्म नहीं हैं। लेकिन इसे विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न नामों से पुकारते हैं। इसमें शरबती नाम की किस्म अधिक प्रचलित है। इसके अलावा लोकल किस्मों की खेती भी विभिन्न स्थानों पर की जाती है। इसके किस्मों का वर्गीकरण पौधे की वृद्धि के अनुसार लम्बी व बौनी किस्म के रूप में भी किया गया है।

खाद उर्वरक: फालसा की काट–छांट के बाद 15–20 किग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 100 ग्राम नाइट्रोजन, 40 ग्राम फास्फोरस व 40 ग्राम पोटाश प्रति पौधा की दर से पौधे की फैलाव के अनुसार तने के चारों तरफ 1–2 मीटर की दूरी पर खाद देते हैं। खाद व उर्वरक देने के बाद गुड़ाई करके मिट्टी में मिला देते है। तथा बाद में सिंचाई कर दी जाती हैं। पोषक तत्वों की पूर्ति से पौधे से फलत गुणवत्ता युक्त प्राप्त होती है। तथा पौधे की आयु मे वृद्धि होती है।

सिचाई: फालसा एक सूखा प्रतिरोधी पौधा हैं। इसलिए इसे अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। लेकिन फल लगने से लेकर पकने तक समयानुसार 15–20 दिन के अन्तराल से सिंचाई करने से अच्छे गुण वाले फल प्राप्त होते हैं यदि पानी की कमी हो तो फल में बढ़वार के समय पानी अवश्य देना चाहिए। इससे फल के आकार में बढ़ोत्तरी के साथ–साथ रस की मात्रा में भी वृद्धि होती है। ठंडक के समय (दिसम्बर–जनवरी) में पानी नहीं देना चाहिए।

कटाई-छटाई: कटाई–छटाई फालसा की बागवानी का महत्वपूर्ण पहलू है क्योंकि फालसा की फलत नये प्ररोहों पर होती है। कटाई–छटाई के बाद निकलने वाले प्ररोह स्वस्थ रहते हैं। तथा पुष्पन इन्हीं प्ररोहों पर होती है। बिना कटाई–छटाई के पौधे ऊँचाई में अधिक बढ़ जाते हैं। जिसके कारण फलों की तुड़ाई कठिन होती है। तथा इन पौधों में रोग व कीट का प्रकोप अधिक होता है। कटाई–छंटाई न करने से नसें प्ररोहों की संख्या में कमी होती है। जिसके फलस्वरूप उत्पदान में कमी आती है। पौधों की कटाई जमीन से 90 से 100 सेमी की ऊँचाई से करते हैं। सुषुप्तावस्था फालसा की कटाई–छंटाई का सर्वोत्तम समय होता है। दिसम्बर–जनवरी में कटाई–छंटाई की प्रक्रिया पूरी कर लेनी चाहिए क्योंकि इस समय पौधा सुषुप्तावस्था में रहता है। सुषुप्तावस्था से पहले कटाई–छंटाई करने से नये प्ररोह पाले से मर जाते हैं।

परागण व फलन: फालसा में पुष्पन फरवरी–मार्च में होता है। जो मई माह तक चलता रहता है। पुष्प नई पत्तियों के कक्ष से निकलते हैं। प्रत्येक कक्ष से 3–7 पुष्प डंठल निकलते हैं। तथा प्रत्येक पुष्प डंठल से 3–6 पीले रंग के पुष्प होते हैं। पुष्प में 4–5 बाह्यदल, 4–5 दल, 70–80 पुंकेसर व विकसित जायंगा होता है। फालसा में अधिकतर पर–परागण होता हैं। पर–परागण कीटों (मधुमक्खी) द्वारा होता है। कुछ फलों में स्वपरागण भी होता है। पादप हार्मोन जैसे जिब्रैलक अम्ल 60 पी.पी.एम. या 2,4,5 –टी, 5 पी.पी. एम. या 2, 4–डी, 2.5 पी.पी.एम. का छिडकाव पुष्पन के समय 15 दिन के अन्तराल से दो बार करने से फलन व उत्पादन में बढ़ोत्तरी होती है। फल की परिपक्वता शुरू होने पर 1000 पी.पी.एम. इथरेल का छिड़काव करने से 5 दिन के अन्दर फल पक जाते हैं तथा उत्पादन में वृद्धि होती है। पादप हार्मोन के प्रयोग से फल के आकार, रंग, रस व मिठास में बढ़ोत्तरी होती है।

अन्त:सस्यन व देखभाल : प्रारम्भ के समय में फालसा के बाग के अन्दर दलहन वाली छोटी फसलें जैसे उड़द, मूँग मटर आदि की खेती कर सकते हैं। हरी खाद वाली फसल भी फालसा के बीच में कर सकते हैं। फालसा की कटाई–छटाई के बाद 2 जुताई करना आवश्यक रहता है। इससे खरपतवार नष्ट हो जाते है। जुताई के बाद सड़ी गोबर की खाद पौधों के पास फैलाकर सिंचाई करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर प्रथम सिंचाई के बाद एक जुताई कर सकते हैं।

तुड़ाई व उपज: फल लगने के लगभग 50–60 दिन बाद फल पककर तैयार हो जाते हैं। तुड़ाई का कार्य अप्रैल से शुरू हो जाता है। जो जून माह तक चलता रहता है। इसका पका फल शीघ्र खराब हो जाता हैं इसलिए तुड़ाई के बाद तुरन्त बाजार में बेचना चाहिए। गर्मी में अन्य फलों की आवक कम रहती है। इसलिए इसके फल से कृषकों को आमदनी मिल जाती है। इसके फल छोटे होते हैं। तथा गुच्छे में एक साथ न पककर अलग– अलग समय पर पकते हैं। इस प्रकार इसकी तुड़ाई हाथ से कई बार में करनी पड़ती है। फालसा की औसत उपज 6.0–7.0 किग्रा. प्रति पौधा होती है।

भण्डारण: इसके फल की भण्डारण क्षमता बहुत कम होती हैं। फल तुड़ाई के 24 घंटे में इसका उपयोग कर लेना चाहिए। पकने पर फल का रंग गहरा लाल या बैंगनी रंग का हो जाता है। इस अवस्था में फल मीठा होता है। इसके गूदे मे 80.8 प्रतिशत नमी, 14.7 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 1.5 प्रतिशत प्रोटीन, 0.9 प्रतिशत वसा व 1.2 प्रतिशत रेशा पाया जाता है। इसके प्रति 100 ग्राम खाद्य पदार्थ में 129 मिग्रा. कैल्शियम, 39 मिग्रा., फास्फोरस, 3.1 मिग्रा. लोह, 0.3 मिग्रा. नियासिन, 22 मिग्रा विटामिन सी. तथा 419 माइक्रोग्राम कैरोटीन पाया जाता है।

3. फालसा के प्रमुख कीट व रोग

कीट व रोग: फालसा में छाल भक्षक कीट, तना वेधक कीट, फल खाने वाला कीड़ा व मिलीबग का प्रकोप कभी–कभी देखने को मिलता है। छाल भक्षक कीट व तना बेधक कीट की रोकथाम के लिए छिद्र को साफ करके केरोसीन डालकर छिद्र को गीली मिट्टी से बन्द कर देते हैं। फल खाने वाले कीड़े व मिली बग की रोकथाम हेतु इन्डोसल्फान 2 मिली दवा प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। फालसा की दिसम्बर–जनवरी में कटाई–छंटाई करने से भी काफी हद तक कीट व बीमारियों की रोकथाम हो जाती है। फालसा में पर्णचित्ती रोग या भूरा धब्बा रेग लगता है जो सरकोसपोरा ग्रेविई नामक फफूंद से फैलता हें इसकी रोकथाम लिए कटाई–छटाई के बाद पौधे पर बोर्डो पेस्ट (5:5:50) का लेप करें या ब्लाटाक्स–50 कि 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिए।

12

बेर में व्याधि व समन्वित कीट प्रबंधन

ऋतु मावर[1], लाधु राम[2] व ए.एस. तोमर[3]

1. प्रस्तावना
2. प्रमुख रोग
3. प्रमुख कीट

1. प्रस्तावना

शुष्क क्षेत्र बागवानी में बेर की फसल का प्रमुख स्थान है। वर्षा पर आधारित उद्यानिकी में बेर एक ऐसा फलदार पेड़ है जो कि एक बार पूर्ण सिंचाई से स्थापित हो जाने के पश्चात वर्षा के जल पर निर्भर रहकर फल उत्पादन करता रहता है। शुष्क क्षेत्रों में बार–बार अकाल की समस्या एक आम बात है। इस भंयकर स्थिति से निपटने के लिए बेर की बागवानी बहुत ही लाभदायक हो सकती है। इस पेड़ की पत्तियाँ, पशुओं के लिए पौष्टिक चारा प्रदान करती है तथा इसकी कटाई–छंटाई के उपरान्त प्राप्त होने वाली झाड़ियाँ खेतों व ढ़ाणियों में रक्षात्मक बाड़ बनाने हेतु बहुत कारगर है। शुष्क क्षेत्र में मुख्यतः अगेती व मध्यम अवधि में पकने वाली बेर की किस्में उपयुक्त मानी जाती है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान–काजरी, जोधपुर (राजस्थान) में पिछले कई दशकों से बेर की उन्नत किस्मों पर शोध कार्य जारी है।

इन शोध कार्यों में उत्पन्न प्रमुख किस्मों का वर्गीकरण निम्न प्रकार है

1. अगेती किस्में: गोला, काजरी गोला, अगेती किस्मों में कीट व व्याधियों का प्रकोप ज्यादा रहता है।

2. मध्यम किस्में: सेव, कैथली, छुहारा, गोमा, कीर्ति इत्यादि। इनके फल मध्य जनवरी से मध्य फरवरी तक उपलब्ध रहते है।

3. पछेती किस्में: उमरान, टीकड़ी, इलाइची इत्यादि। इन किस्मों के फल फरवरी–मार्च तक उपलब्ध रहते हैं।

अतः उन्नत किस्मों और खेती के आधुनिक तरीकों के प्रयोग से बेर की खेती बहुत लाभप्रद हो गयी है। परन्तु बीमारियों व कीड़ों के प्रकोप के कारण काफी नुकसान भी होता है। इस लेख में बेर में पौध संरक्षण के उपायों का वर्णन किया गया है।

2. प्रमुख रोग

छाछ्या (ओईडियम इरीसाईफॉयडीज प्रजाति जिजीफाई): यह बेर का प्रमुख रोग है। वर्तमान में इसके प्रकोप से बेर की उपज कई स्थानों पर काफी कम हो गयी है। यह रोग नई पत्तियों की निचली सतह पर सफेद चूर्ण की तरह शुरू होता है जिससे पत्तियाँ सिकुड़ जाती है व बाद में गिर जाती है। फलों पर इसकी शुरूआत अक्टूबर–नवम्बर में होती है। जब फल पर छोटे–छोटे सफेद धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे धीरे–धीरे आकार में बड़े होने लगते हैं व दिसम्बर में लगभग भूरे या गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। रोग ग्रसित फल समय से पूर्व ही जमीन पर गिर जाते है अथवा सख्त हो जाते है।

[1–2]भा.कृ.अनु.प.–केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)। ई–मेलः ritumawar1976@gmail.com; Mobile: 94601-05928
[3]कृषि विज्ञान केन्द्र, काजरी, जोधपुर (राजस्थान)।

प्रबंधन: इस रोग के प्रबंधन का सबसे प्रमुख उपाय रोग रोधी किस्मों को लगाना है। रोग के लक्षण दिखते ही कैराथेन 48 प्रतिशत ई.सी. (0.2 प्रतिशत) या कैलीक्सीन (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए।

सूटी मोल्ड (इसेरियोपसिस इन्डिका प्रजाति जिजीफाई): यह रोग पंजाब व हरियाणा में ज्यादा होता है। राजस्थान में इसका प्रकोप अभी तक नहीं देखा गया है। इस रोग की शुरूआत पत्तियों की निचली सतह पर छोटे–छोटे काले धब्बों के रूप में होती है। धीरे–धीरे ये धब्बे पत्तों की पूरी निचली सतह पर छा जाते है। ऊपरी सतह पर पत्ती पीली दिखाई देती है व जल्दी गिर जाती है।

प्रबंधन: इस रोग के लक्षण दिखते ही ब्लाई–टोक्स–50 या फाईटोलान (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव 15 दिन के अन्तराल से करना चाहिए।

पत्ती धब्बा: बेर की पत्तियों पर अलग–अलग समय कई प्रकार के धब्बे दिखाई देते हैं जिनसे पेड़ पर पत्तियों की मात्रा काफी कम हो जाती है।

आल्टरनेरिया पर्ण दाग (अल्टरनेरिया चार्टारम): ये धब्बे पत्तियों पर दिसम्बर–फरवरी के मध्य दिखाई देते है। इनकी शुरूआत छोटे–छोटे असमान, गहरे भूरे रंग के धब्बों के रूप में होती है। अनुकूल परिस्थितियों में आपस में मिलकर पत्तियों के काफी भाग में छा जाते है जिससे पत्ती झुलस जाती है व समय से पहले ही गिर जाती है।

सर्कोस्पोरा पर्ण दाग (सर्कोस्पोरा जिजीफाई): इनकी शुरूआत जनवरी–फरवरी में छोटे–छोटे गोल धब्बों के रूप में होती है, जो किनारों पर लाल होते है।

प्रबंधन: रोग के लक्षण दिखते ही डायथेन जेड 78 (0.2 प्रतिशत) या काबेन्डाजिम (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव 15–20 दिन के अन्तराल पर दो बार करना चाहिए।

फल गलन: बेर में फफूंद से कई प्रकार के फल गलन भी होते है जिनसे बाजार में बेर की कीमत काफी कम हो जाती है। रोग ग्रसित फलों पर छोटे, गहरे भूरे रंग के धब्बे ऊपरी हिस्से से दिखाई देते है। ये धब्बे फल के पकने तक काफी बड़े हो जाते है।

प्रबंधन: साधारणतया सभी प्रकार के फल गलन डायथेन–जेड–78 (0.2 प्रतिशत) के एक या दो छिड़काव से रोके जा सकते हैं।

3. प्रमुख कीट

बेर की फलमक्खी (कार्पोमाइया वेसूवियाना): अधिक गूदे वाली तथा मीठे बेर की किस्मों पर इस फलमक्खी का अधिक प्रकोप होता है। यह पीले भूरे रंग की छोटी मक्खी होती है। इसके शरीर पर काले धब्बे होते हैं और पंखों पर भूरी झांई रहती है। फूलों से फल बनने के समय यह मक्खी सक्रिय होती है तथा बढ़ रहे फलों में एक–एक कर अण्डे देती है। इन अण्डों से फल के अन्दर ही लार्वा निकलता है जिसके पैर नहीं होते है। यह फल का गूदा खाकर बढ़ता है। पूर्ण विकसित होने पर गंदले सफेद रंग के ये लार्वा फल में छेद कर भूमि पर आ जाते है। भूमि में ही इसका प्यूपा बनता है, जिससे मक्खी निकलती है। अनुकूल परिस्थितियों में प्यूपा से 15–25 दिनों में मक्खी निकल आती है। यह फिर नया जीवनचक्र आरम्भ करती है। कुछ प्यूपा में से मक्खियाँ अगली ऋतु में ही निकलती है। मरू क्षेत्रों में बहुधा इस फलमक्खी पर एक ही जीवन चक्र पूरा होता है।

फलमक्खी लगे फल की पहचान सतह पर बने उस चिन्ह से की जा सकती है, जो मादा के अण्डे देते समय बनता है। गहरे रंग के इस चिन्ह के पास हल्का सा गड्ढ़ा हो जाता है। ऐसे फल चूंकि खाने लायक नहीं है, अतः बाजार में इनकी कोई कीमत नहीं होती है।

प्रबंधन: गर्मी में बेर के पौधों के आस–पास की भूमि की खुदाई–जुताई करनी चाहिए जिससे जमीन के अन्दर पड़े प्यूपा सूर्य की गर्मी से नष्ट हो जाये। पहला छिड़काव एन. एस.के.इ. (5 प्रतिशत) एवं कार्बेरिल (0.2 प्रतिशत) नामक कीटनाशी का करना चाहिए। 3 सप्ताह बाद दूसरा छिड़काव क्विनल्फॉस (0.05 प्रतिशत) नामक कीटनाशी का

किया जा सकता है। तीसरा छिड़काव, यदि आवश्यकता हो तो दूसरे के छः सप्ताह बाद कार्बेरिल या एसीफेट (0.07 प्रतिशत) का किया जा सकता है।

रोयेंदार लार्वा (यूप्रॉक्टिस फ्रेटर्ना): ये बहुभक्षी कीट बेर के पत्तों को अपना आहार बनाते है। आरम्भ में ये समूह में रहते हुए पत्तियों तथा छोटे फलों को खुरच डालते है। कुछ बड़े होने पर ये पौधों पर सब ओर आहार की खोज में फैल जाते हैं तथा आगे आने वाले फलों, पत्तों यहाँ तक कि कोमल शाखाओं तक को खाकर समाप्त कर देते हैं। पूर्ण विकसित लार्वा रोयेंदार लाल भूरे रंग का होता है। इस लार्वा का कीट पीले रंग का होता है जिसके आगे के पंखों पर हल्के रंग की तिरछी रेखाएँ होती है। ये पत्तों की निचली सतह पर समूह में अण्डे देती है जो पीले रोयों से ढके रहते है। इन अण्डों से 7–9 दिन में लार्वा उत्पन्न होते है, जो डेढ़ माह में पूर्ण विकसित होकर पेड़ पर ही पत्तों के बीच प्यूपा बनाते है। प्यूपा से 10–12 दिन बाद कीट निकलता है।

प्रबंधनः पौधों पर 0.1 प्रतिशत कार्बेरिल अथवा एण्डोसल्फान या 0.05 प्रतिशत मिथाइल पैराथियान का छिड़काव करना चाहिए।

चेफर बीटल (होलोट्रिकिया कोनसनगिनिया, सडोरेटस डेकानस): सफेद लार्वा वाले ये वयस्क बीटल मानसून की पहली वर्षा के साथ ही भूमि से निकलते हैं तथा शाम होते ही बेर की पत्तियाँ खाना शुरू कर देते हैं। इनके खाने की गति बहुत तेज होती है। फलतः शीघ्र ही पेड़ पत्ती विहीन हो जाता है।

प्रबंधनः सामूहिक प्रयत्नों द्वारा प्रकाश से इनको आकर्षित कर केरोसीन या कीटनाशक युक्त पानी में डुबोकर नष्ट कर देना चाहिए। कार्बेरिल (0.1 प्रतिशत) या एसीफेट (0.07 प्रतिशत) का छिड़काव भी किया जा सकता है।

अन्य हानिकारक कीटः टॉनिका जिजीफाई नामक कीड़े के लार्वा पत्तियों को आपस में बांध–गूंथ कर अन्दर रहते हुए पत्तियाँ खाते है। पत्ती की पतंग (तारूकस थियोफ्रेस्ट्स) के लार्वा भी बेर के पत्ते खाते हैं। ऐसे पत्तों पर मात्र पारदर्शक बाहरी सतह ही बचती है। शेष हरा भाग कीड़ों द्वारा खा लिया जाता है। पोर्योमोल्गा के लार्वा भी पत्तियाँ खाकर नुकसान पहुँचाते हैं।

कई स्थानों पर फल छेदक कीट फलों को बेकार कर देते है। गहरे भूरे रंग के इस कीट के लाल लार्वा फल के गूदे पर पलते है तथा फलमक्खी की भाँति हानि पहुँचाते हैं। मैसरोटा नामक बग पौधों का रस चूसकर उन्हें कमजोर बना देते है। दीमक अन्य पेड़ों की तरह बेर पर भी जड़ों व शाखाओं पर लगती है।

प्रबंधनः रोकथाम के लिए डाइकोफोल 18.5 प्रतिशत ई.सी (3 मी.ली. प्रतिलीटर पानी) नामक कीटनाशक का छिड़काव दो बार, 10 दिन के अन्तराल में करना चाहिए।

छाछया रोग

फलमक्खी लगे फल

13

गर्मी की जुताई–किसानों के लिये फलदायी

लाधु राम[1], दीपेश[2] व ऋतु मावर[3]

1. प्रस्तावना
2. गर्मी की जुताई कब और कैसे करें?
3. ग्रीष्मकालीन जुताई के लाभ
4. सावधानियाँ

1. प्रस्तावना

फसल की अच्छी उपज के लिये रबी की फसल कट जाने के बाद अप्रैल से जून तक मिट्टी पलटने वाले हल (एम.बी. प्लो या डिस्क प्लो) से ढ़लान के अनुरूप की जाने वाली जुताई को ग्रीष्मकालीन जुताई कहते हैं। यह जुताई खरीफ फसलों के लिए बहुत ही लाभप्रद होती है। भूमि–जनित रोगों की रोकथाम के लिये अपनाई जाने वाली यह सबसे पुरानी प्रणाली है। प्रत्येक तीसरे वर्ष खेतों की गहरी जुताई आवश्यक रूप से करनी चाहिए क्योंकि एक ही प्रकार के कृषि यंत्रों जैसे देशी हल या ट्रेक्टर चालित कल्टीवेटर आदि द्वारा खेतों की लगातार जुताई करते रहने के कारण भूमि की एक निश्चित गहराई की सतह कठोर बन जाती है जिसके कारण भूमि के अन्दर वर्षा जल का अवशोषण नहीं होकर बहकर खेत से बाहर निकल जाता है। इसको उपयोग में लाने कि लिए रबी की फसल काटते ही जुताई आरम्भ कर देनी चाहिए क्योंकि फसल कटने के तुरन्त बाद मिट्टी में थोड़ी नमी होती है जिससे जुताई करने में आसानी रहती है। ऐसा करने में विलम्ब नहीं करना चाहिए क्योंकि थोड़े समय पश्चात् मिट्टी की नमी का वाष्पीकरण हो जाता है और खेत सूख जाते हैं। ऐसी अवस्था में चिकनी मिट्टी में गहरी जुताई करना कठिन हो जाता है।

2. गर्मी की जुताई कब और कैसे करें?

गर्मी की जुताई के लिये अप्रैल का अन्तिम सप्ताह या मई का प्रथम सप्ताह उपयुक्त रहता है। इसके लिये रबी की फसल कट जाने के तुरन्त बाद अप्रैल से जून तक मिट्टी पलटने वाले हल (एम.बी. प्लो या डिस्क प्लो) से ढ़लान के अनुरूप गहरी जुताई (20–30 से.मी.) उपयुक्त मानी जाती है।

3. ग्रीष्मकालीन जुताई के लाभ

ग्रीष्मकालीन जुताई के लाभ निम्नांकित हैं:

मिट्टी की जलधारण क्षमता को बढ़ाना: खेत की गहरी जुताई करने से मिट्टी काफी गहराई तक पलट जाती है जिससे भूमि की कठोर सतह के टूट जाने से मिट्टी गहराई तक भूरभूरी बन जाती है जिससे मानसून की पहली वर्षा का पूरा पानी जमीन के अन्दर चला जाता है तथा बहकर बाहर नहीं जाता। इससे पानी का संरक्षण भी हो जाता है जो खरीफ फसलों के लिए बहुत ही आवश्यक होता है। इसके साथ ही साथ पहली वर्षा में वायुमण्डल में उपस्थित 78

[1]भा.कृ.अनु.प.–केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)। ई–मेलः lrchoudhary2015@gmail.com; Mobile: 86964-88864

प्रतिशत नत्रजन भी घुलकर सीधी खेतों में चली जाती है जो खरीफ फसल को सीधा फायदा देता है व खेत की उर्वरा शक्ति में बढ़ोत्तरी होती है तथा वर्षा का सारा पानी जमीन में चले जाने के कारण भूमि के जल स्तर में भी वृद्धि होती है।

भूमि में उचित तापमान बनाए रखना: गर्मी की गहरी जुताई करने से मिट्टी अच्छी तरह पलट जाती है व भूमि के अन्दर मृदा सरंचना सुधर जाती है जिससे सूर्य से निकलने वाली किरणें सीधी भूमि के अन्दर पहुंच जाती हैं तथा उचित कार्बनिक पदार्थों का संचयन होता रहता है जिससे खरीफ फसलों के बोये गये बीजों का अकुंरण आसानी से हो जाता है तथा पौधों की वृद्धि में भी बढ़ोत्तरी होती है।

हानिकारक कीटों व रोगों पर नियंत्रण: गर्मी की जुताई करने से हानिकारक कीटों व रोगों का प्रभावी प्रबंधन किया जा सकता है। जैसे दीमक, सफेद लट, अमेरिकन सूण्डी, कट बग, तना छेदक, तम्बाकू इल्ली, उखटा, जड़गलन, नीमेटोड, आदि। इस जुताई से कीड़ो के अण्डे, प्यूपा, इल्ली भूमि की सतह पर आ जाते हैं तथा सूर्य की गर्मी से नष्ट हो जाते हैं या पक्षियों द्वारा खा लिये जाते हैं। गहरी जुताई गेहूं व जौ की मोल्या बीमारी को कम करने में काफी कारगर है। फलस्वरूप फफूंदनाशी, कीटनाशी तथा सूत्रकृमिनाशी दवाओं पर होने वाले खर्च से बचा जा सकता है तथा इनसे पर्यावरण पर पड़ने वाले बुरे प्रभाव से भी बचा जा सकता है।

खरपतवारों का प्रबंधन: खरीफ की फसल को सबसे अधिक नुकसान खरपतवारों से ही होता है अतः इनको फसल उगाने से पहले ही नष्ट कर दिया जाये तो इससे होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। अधिकांश खरपतवारों एवं उनके बीजों को गर्मी की जुताई करके नष्ट किया जा सकता है। अतः गर्मी में 45–48 डिग्री सेन्टीग्रेड तापक्रम पर दो या तीन जुताई करने से बहुवर्षीय खरपतवार नष्ट हो सकते हैं। जिसके फलस्वरूप फसल तथा खरपतवार में प्रतिस्पर्धा कम हो जाती है तथा खरपतवारनाशी में लगने वाली लागत में भी कमी आती है।

मृदा अपरदन का प्रबंधन: मृदा का अपरदन मुख्यतः बहुत तेज गति से चलने वाली हवाओं से तथा पानी से होता है। मृदा अपरदन से भूमि की ऊपरी सतह पर उपस्थित पोषक तत्व हवा व पानी में बहकर चले जाते हैं तथा भूमि बंजर हो जाती है। ढ़लान के अनुरूप गर्मी की जुताई करने से मृदा अपरदन में काफी सीमा तक नियंत्रण देखा गया है। गर्मी की जुताई से भूमि की ऊपरी परत में जल धारण क्षमता बढ़ जाती है तथा ढ़लान के अनुरूप जुताई से ढलान में कटौती आती है। मिट्टी में उपस्थित ढ़ेलों की वजह से हवा के बहाव की गति में कमी आती है।

उन्नत मृदा वातन: मृदा वातन सूक्ष्मजीवों के गुणन में बहुत महत्वपूर्ण है। जिससे कार्बनिक पदार्थों के अपघटन की

प्रक्रिया में तेजी आती है। फलस्वरूप पदार्थों के अपघटन की प्रक्रिया में तेजी आती है तथा पौधों को ज्यादा मात्रा में पोषक तत्वों की उपलब्धता बनी रहती है। उन्नत मृदा वातन से मृदा में उपस्थित हानिकारक खरपतवारनाशी तथा पीड़कनाशियों के अवशेषों का भी विघटन हो जाता है। जिससे इन हानिकारक रसायनों का प्रभाव पौधों पर नहीं पड़ता।

जीवांश खाद की उपलब्धता: गर्मी के समय में रबी व जायद फसलों की कटाई के बाद खेत की गहरी जुताई करने से इन फसलों के अवशेषी डंठल व पत्तियाँ आदि मृदा में दब जाते हैं। जो कि बारिश के मौसम में सड़कर जमीन में जीवांश पदार्थ तथा पौषक तत्व की प्रचुरता बनाये रखते हैं। गर्मी की जुताई से गोबर की खाद एवं उपलब्ध अन्य कार्बनिक पदार्थ भूमि में भली भांति मिल जाते हैं तथा उनके अपघटन के लिये पर्याप्त समय मिल जाता है। जिससे पोषक तत्वों की उपलब्धता शीघ्र सुनिश्चित हो जाती है।

गर्मी की जुताई करने से खेत खरीफ की फसलों की बुवाई हेतु समय पर तैयार मिलता है। मानसून की प्रथम वर्षा के आगमन के साथ ही किसान भाई फसल की बुवाई कर अधिकतम लाभ के साथ अच्छी फसल प्राप्त कर सकते हैं।

खेतों में गर्मी की जुताई करते समय एक बात का विशेष ध्यान रहे कि एक गहराई पर लगातार जुताई न करके स्थिति के अनुसार अलग अलग गहराई पर जुताई कर अधिक फसलोत्पादन को बढ़ावा देना होता है इसके साथ ही मानसून प्रारम्भ होते ही देशी हल या ट्रेक्टरों से दो–तीन बार खेत की जुताई कर पाटा चलाकर खेत को समतल बना लेना चाहिए तथा पानी का सही ढंग से तथा सही समय पर संचय करके फसलोत्पादन लेना चाहिए। जिससे कम लागत में अधिक आय प्राप्त होती है।

4. सावधानियाँ

- गर्मी के समय खेत की जुताई खेत की ढाल के अनुरूप करें ताकि वर्षा का पानी ज्यादा से ज्यादा खेत में उपस्थित मिट्टी द्वारा सोखा जाए और जमीन के कटाव को रोकने में मदद मिलेगी।
- हल्की व रेतीली मिट्टी में ज्यादा जुताई नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे हवा व पानी से मिट्टी का कटाव बढ़ जाता है।

निष्कर्ष

गर्मी की जुताई से हानिकारक खरपतवारों के बीज तेज गर्मी में नष्ट हो जाते हैं तथा बाकि बचे बीज ज्यादा गहराई में पहुँच जाते हैं जिसके कारण इनका अंकुरण नहीं हो पाता है। फलस्वरूप खेत को हानिकारक खरपतवारों से छुटकारा मिल जाता है। गर्मी की जुताई किसानों के लिए बहुत ही लाभप्रद होती है। इससें मृदा में उपस्थित हानिकारक फफूंद, जीवाणु, कीट जैसे दीमक, सूत्रकृमि आदि की संख्या में कमी आती है। इसके अलावा मृदा में हानिकारक अवशेषी खरपतवारनाशी, पीड़कनाशी फफूंदनाशी आदि का विघटन भी तेजी से होता है। गर्मी की जुताई से मृदा की संरचना में सुधार आता है, पौधों के लिए पोषक तत्वों की प्रचुरता बनी रहती है तथा मृदा वातन में सुधार से लाभदायक अपघटन की प्रक्रिया में तेजी आती है।

खंड–3

14 पशु–आहार में प्रोबॉयोटिक का महत्व एवं उपयोग

पी.पी. रोहिल्ला[1]

1. प्रस्तावना
2. पशुओं को प्रोबाँयोटिक खिलाने के लाभ
3. मुर्गियों को प्रोबॉयोटिक खिलाने के लाभ
4. सारांश

1. प्रस्तावना

प्रोबॉयोटिक ग्रीक शब्द है जिसका प्रयोग सर्वप्रथम पारकर नामक वैज्ञानिक ने सन् 1974 ईस्वी में किया था। बाद में फुल्लर ने इसकी पुनः व्याख्या एक सजीव सुक्ष्माणु खाद्य योगज (माइक्रोबीयल फीड एडीटिव) के रूप में की जो पशु की पाचन नली में सुक्ष्म जीवाणुओं का संतुलन सुधारकर लाभदायक प्रभाव पैदा करते हैं। प्रोबॉयोटिक विशेष जीवाणुओं का उपक्रम है जिसमें लेक्टोबैसिलस समूह के जीव बीजाणु के रूप में मुख्य भूमिका अदा करते हैं।

जुगाली करने वाले पालतु पशुओं के दैनिक आहार में रेशेदार पदार्थों जैसे– भूसा, कड़बी और हरे चारे की मात्रा अधिक होती है परन्तु अन्य पशुओं की तरह इनके आहार के रेशेदार घटक को पचाने की क्षमता नहीं होती इसलिये प्रकृति ने इन पशुओं के आहार नाल के अगले भाग को काफी बड़े रूप में विकसित करके उनमें कई प्रकार के लाभकारी सूक्ष्माणुओं के रहने व बढ़ने के लिये उपयुक्त वातावरण का प्रावधान रखा है। इन पशुओं के उदर के अग्र भाग (रूमेन) में उपस्थित द्रव्य के 1 मिलीलीटर में करीब 106 प्रोटोजोआ व 1010 बैक्टीरिया पाये जाते हैं। अतः रेशेदार खाद्य पदार्थों का पाचन इन्हीं परजीवियों के द्वारा ही सम्भव हो पाता है। इस प्रकार ये सुक्ष्माणु दाने–चारे के रेशों को पचाने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप दाने–चारे से वाष्पशील वसा अम्ल बनते हैं जो पशु को ऊर्जा प्रदान करते हैं।

इन सुक्ष्माणुओं को बड़े पैमाने पर दो भागों में बांटा जा सकता है। स्थायी सुक्ष्मजीवों का समूह जो साधारणतया आंत में देखे गये हैं वे काफी उपयोगी होते हैं। दूसरा समूह अस्थायी है जो समय–समय पर दिखाई देता है। ये थोड़े समय के लिये रूकते हैं तथा भोजन नली से गुजरते समय अपना लाभकारी प्रभाव डालते हैं। इसके अतिरिक्त ये मित्र जीवाणु वृद्धि को सक्रिय करते हैं। इन परिवर्तनों के कारण पशु की सेहत व जीवनकाल दोनों में बढ़ोत्तरी होती है। यह पाया गया है बुल्गारिया के किसानों की लम्बी आयु का सम्बन्ध भी लैक्टोबैसिलस जीवाणु से किण्वित दूध के सेवन को माना जाता था और इसी आधार पर प्रोबॉयौटिक की उपयोगिता की जानकारी हुई।

स्वस्थ पशुओं व मुर्गियों की आहार नलिका में लाभदायक व हानिकारक जीवाणुओं में एक संतुलन बना रहता हैं, जब यह संतुलन बिगड़ जाता है व हानिकारक जीवाणु अधिक मात्रा में हो जाते हैं तब बीमारी का कारण बन जाते हैं। ऐसे पशु प्रायः कमजोरी की ओर अग्रसर होते हैं। ऐसे पशुओं की वृद्धि दर व उत्पादन कम हो जाता है व कभी–कभी मृत्यु भी हो जाती है। दूसरी और जब लाभदायक जीवाणु अधिक मात्रा में हो जाते हैं तब पशु का स्वास्थ्य सुधरने लगता है तथा वृद्धि दर व उत्पादन अधिकतम सीमा तक बढ़ना निश्चित होता है।

प्रोबॉयोटिक जीवाणु कुछ लाभदायक एण्टीबॉयोटिक उत्पन्न करते हैं– एसिडोलिन,

[1]प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर। ई–मेलः drpprohilla@gmail.com; Mobile: 94608-21657

एसिडोफायलीन व लैटिन आदि। ये सभी रोगजनक जीवाणुओं के प्रति काफी प्रभावी होते हैं। जैसे कि– ई–कोलाई, जो कि आमाशय व आंत का मुख्य रोगजनक जीवाणु है। इसके अतिरिक्त ये जीवाणु कुछ विशेष जैविक अम्ल– फॉरमिक, लैक्टिक व एसिटिक अम्ल भी उत्पन्न करते हैं व आंत सम्बन्धी अम्लता बढ़ाते हैं। इस प्रकार आमाशय व आंतों की सामग्री रोगजनक जीवाणुओं की वृद्धि व गुणन के लिये अनुकूल नहीं होते। पशुओं व मुर्गियों में दस्त व पेचिश नहीं हो पाते।

आजकल पशुओं से अधिक उत्पादन की होड़ में एंटिबॉयोटिक अधिकाधिक उपयोग होने लगा है जो कि पशुओं के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है। इसीलिये एंटिबॉयोटिक के प्रयोग से होने वाले दुष्प्रभाव से बचने के लिये 'लैक्टोबैसिलाई' का दवा के रूप में प्रयोग शुरू किया गया। प्रोबॉयोटिक एक प्रकार से पाचन नली में पाये जाने वाले सुक्ष्माणु समूह के ही होते हैं। अतः किसी न किसी रूप में वे पशु के लिये लाभदायक सिद्ध होते हैं, और आहार पाचन के लिए सुक्ष्माणुओं की पूर्ण क्षमता विकसित करने में सहयोगी होते हैं। इस प्रकार प्रोबॉयोटिक पशुओं के स्वास्थ्य व दुग्ध उत्पादन में काफी उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

पशुओं की पाचन नली में प्रायः आंत्रियविशजनी बैक्टीरिया होते हैं। जुगाली करने वाले पशुओं के नवजात बछड़ों और अस्वस्थ पशुओं के लैक्टिक अम्ल उत्पादन बैक्टिरिया का उपयोग सिर्फ उनका स्वास्थ्य व उत्पादन बढाने के लिये ही नहीं बल्कि उनकी आहार नली में सुक्ष्माणुविक परिवेश को सामान्य बनाने के लिये भी किया जाता है। नवजात बछड़ों के आहार में लेक्टोबैसिलाई से किण्वित दूध पिलाने पर अतिसार की उग्रता में कमी आती है और पशु कम समय में ठीक हो जाते हैं। लैक्टोबैसिलाई पाचन नली में अधिक मात्रा में एसिटिक और लैक्टिक अम्ल का उत्पादन करते हैं, जिसके कारण आहार नली के द्रव्य का पी.एच. (क्षाराम्ल प्रतिक्रिया) घट जाती है। ये अम्ल आंतों में नुकसानदायक सुक्ष्माणुओं के लिये हानिकारक साबित होते हैं, और इनकी विषाक्तता घटे पी.एच. पर कई गुणा बढ़ जाती है।

लैक्टोबैसिलस का प्रोबॉयोटिक के रूप में होने वाले लगभग सभी परीक्षणों में यह पाया गया है कि आंतों में कॉलोनी बनाने के लिये इसकी स्पर्धा रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं से रहती है और इनमें लैक्टोबेसिलस की क्षमता अधिक होने के कारण ये रोगाणुओं का आहार नाल से बाहर निकाल देते हैं। यही कारण है कि गाय व भैंस के नवजात बच्चों को स्वस्थ रखने व उनकी मृत्यु दर कम करने के लिये लेक्टोबैसिलस खिलाने की सलाह दी जाती है। लैक्टाबैसिलस द्वारा उत्पादित हाइड्रोजन परऑक्साइड कम पी.एच. पर अपनी ज्यादा शक्तिशाली रोगाणु क्षमता के कारण रोगाणुओं को मारने में आंशिक रूप से जिम्मेदार है।

वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा यह पाया गया है कि जुगाली करने वाले पशुओं के आहार में खमीर के प्रयोग से आहारनली के पी.एच. में स्थिरता आने से सेलूलोज पचाने वाले बैक्टीरिया की संख्या बढाने के लिये अनुकूल वातावरण बनता है। रूमेन में खमीर का बहुत ही महत्वपूर्ण लक्षण ऑक्सीजन उपयोग है। दाना–चारा खाने के साथ–साथ जुगाली करने वाले पशु हवा में निश्चित ऑक्सीजन का बुरा असर पड़ता है, क्योंकि अधिकांश रूमेन सूक्ष्माणुओं के लिये ऑक्सीजन हानिकारक होती है।

इस तरह यीस्ट/खमीर खाने के साथ रूमेन में जाने वाली ऑक्सीजन उपयोग करके रूमेनी सुक्ष्माणुओं को ऑक्सीजन के हानिकारक प्रभाव से बचाते हैं। सैक्रेरोमाइसिज सेरिवेसी विटामिन और अन्य आवश्यक तत्व प्रदान करके रूमेन के कवक जैसे कि– नियोकैलिमेटीक्स

फ्रोंटैलिस के जूस्पोट के अंकुरण और सेल्युलोज पचाने की क्षमता बढाते हैं।

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान के क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र पर किये गये परीक्षणों से यह तथ्य सामने आया है कि बकरी के नवजात छौनों को प्रोबॉयोटिक्स खिलाने से शारीरिक वृद्धि दर में 45–47 प्रतिशत अधिक बढोत्तरी दर्ज की गई। साथ ही दूध देने वाली मारवाड़ी बकरियों में भी 43–48 प्रतिशत अधिक दुग्ध उत्पादन रिकार्ड किया गया।

2. पशुओं को प्रोबॉयोटिक खिलाने के लाभ

प्रोबॉयोटिक को कम तापमान पर सुखाकर चूर्ण अथवा गोली या आहार में खिलाते हैं। सामान्य दशा में पोष्य माध्यम में सुक्ष्माणओं का संवर्ध बनाए रखना बहुत ही कठिन कार्य है। ठोस माध्यम से किण्वित खाद्य का उत्पादन एक अच्छा विकल्प है और यह विधि बहुत ही सस्ती व सरल है तथा कृषकों द्वारा आसानी से अपनाने योग्य भी है। किण्वित खाद्य में सुक्ष्माणुओं की संख्या बहुत ही तेजी से बढती है। क्योंकि सुक्ष्माणु सक्रिय अवस्था में होते हैं इसीलिये पशु की पाचन नली में पहुँचते ही अपना प्रभाव डालना शुरु कर देते हैं, जबकि चूर्ण या गोली के सुक्ष्माणु निष्क्रिय अवस्था में होते हैं, इसलिये पशु की पाचननली में पहुँचने के बाद सक्रिय होने के लिये थोड़ा समय लेते हैं तथा इनकी संख्या भी धीमी गति से बढ़ती है। किण्वित खाद्य में बैक्टिरिया और उनके द्वारा उपापचय पदार्थ दोनों ही होने से वे अधिक प्रभावशाली होते हैं।

गाँव में पशुपालकों द्वारा पशु उत्पादन में सुधार के लिये प्रोबॉयाटिक का दैनिक उत्पादन अतिआवश्यक है। खमीरी खाद्य योगज में भी अवांछित सुक्ष्माणु नहीं पाये जाते हैं। यह सम्भवतः इसके द्वारा उत्पादित इथनोल के कारण होता है जो कि हानिकारक सुक्ष्माणुओं के लिये प्रतिरोधी है। प्रोबॉयाटिक प्राशन हेतु ठोस माध्यम किण्विन विधि पशुपालक आसानी से अपना सकते हैं।

इसी प्रकार भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा किये गये परीक्षण में सेक्रोरोमाइसिज सेरिवेसी की प्रजाति एन.सी.डी.सी.–49 और लैक्टोबेसिलस ससिडोफिलस की एन.सी.डी.सी.–15 प्रजाति प्रोबॅयोटिक के रूप में उपयोग के लिये उपयुक्त पाई गई है। प्रोबॉयोटिक खिलाने से बछड़ों में अतिसार का प्रकोप जन्म के प्रथम चार सप्ताह में काफी कम था। अन्नयुक्त एवं अन्नविहिन दोनों प्रकार के मिश्रित दानायुक्त आहार के साथ लैक्टिक अम्ल उत्पादी बैक्टीरिया से किण्वित दूध पिलाने पर दस्त रोग के प्रकोप तथा घटना में बहुत कमी पायी गई। लैक्टिक अम्ल उत्पादी बैक्टिरिया आहार नाल में उपस्थित कोलीफार्म बैक्टीरिया की संख्या काफी कम हो जाती है, सैक्रोमाइज सरिवेसी खिलाने से संकर बछड़ों की आहार उपयोगिता एवं शरीर भार में अधिक वृद्धि पाई गई।

3. मुर्गियों को प्रोबॉयोटिक खिलाने के लाभ

बलाघात (स्ट्रेस) की स्थिति में लैक्टोबेसिलस समूह के जीवाणुओं की संख्या आहार नलिका में काफी हद तक कम हो जाती है। इसके परिणाम स्वरूप हानिकारक जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि हो जाती है जो पाचन प्रक्रिया का क्षति/बाधित करता है। इन परिवर्तनों के कारण उनका स्वास्थ्य व गतिविधियां प्रभावित होती है। पशुओं एवं मुर्गियों की वृद्धि दर एवं उत्पादन काफी नीचे गिर जाता है। जब बलाघात अधिक व लम्बे समय तक रहता है तो पशु काफी कमजोर व सुस्त हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप ये पशु बीमारियों व मृत्यु के उन्मुख हो जाते हैं। पशुओं व मुर्गियों में कई प्रकार के बलाघात होते हैं जैसे कि– अत्यधिक सर्दी व ठण्ड, गर्मी, एण्टीबॉयोटिक औषधियां व टीकाकरण आदि। तब क्या ही अच्छा हो कि हम पशुओं को प्रोबॉयोटिक खिलायें। यह व्याधियों को काबू करने का एक प्राकृतिक साधन है। यह पाया गया है कि जब पशुओं को इन जीवों के बीजाणु खिलाते हैं तो वे बड़ी आसानी से तुरन्त सामान्य अवस्था प्राप्त कर लेते है, विशेषकर आमाशय व आंत सम्बन्धी बीमारियों में।

मुर्गियां अपने आहार के लिये अधिकतर विटामिनों पर आधारित रहती हैं ज्यादातर विटामिन 'बी' कॉम्पलेक्स के समूह पर। जब प्रोबॉयोटिक खिलाये जाते हैं तो इनमें से

कुछ विटामिन मुर्गी अपने शरीर में उत्पन्न करने में सक्षम होती है। इस प्रकार उनका स्वास्थ्य एवं जीवनकाल दोनों में अधिक सुधार होता है क्योंकि कुछ आवश्यक तत्व इनके शरीर में बनते हैं। जब हम इन्हें प्रोबॉयोटिक को योज्य के रूप में खिलाते है तो ये आहार नली की प्रक्रिया में आवश्यक सुधार करके आहार पाचन क्षमता व उत्पादन को बढ़ावा देते हैं। इनकी उपस्थिति के कारण संक्रमण में भी कमी आती है। बीमार पक्षियों व बीमारी के प्रकोप के बाद प्रोबॉयोटिक प्रयोग में लाने पर पशु तुरंत सामान्य अवस्था प्राप्त कर लेते हैं व पक्षियों की भूख में सुधार होता है। यह प्रभाव आंतो वाली बीमारी में अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। प्रोबॉयोटिक हर बार कमजोरी दूर करने में लाभदायक सिद्ध हुए हैं। अतः मुर्गियों की प्रत्येक श्रेणी व पशुओं की विशेष श्रेणी को प्रोबॉयोटिक खिलाना हर समय उत्साहजनक परिणाम देता पाया गया है।

प्रोबॉयोटिक का चाहे तो योज्य के रूप में, औषध के रूप में, जैसे भी खिलायें ये सदैव सुरक्षित पाये गये हैं व पशुओं में अभी तक किसी भी प्रकार की विषाक्तता नहीं पायी गई हैं; क्योंकि यह बीमारी ठीक करने का एक प्राकृतिक तरीका है। इनमें स्वादिष्टता की कोई समस्या ही नहीं हैं क्योंकि इनमें किसी भी तरह का कोई स्वाद या सुगन्ध नहीं होता है। इन्हें हम आहार में मिलाकर या पानी में घोलकर या औषध और टॉनिक (शक्तिवर्धक) के रूप में पशुओं व मुर्गियों को खिला सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रोबॉयोटिक सभी एण्टीबॉयोटिक की तुलना में काफी सस्ते भी होते हैं।

4. सारांश

बलाघात (स्ट्रेस) एवं रोगमुक्त होने पर पशुओं को प्रोबॉयोटिक खिलाना उपयोगी एवं लाभदायक रहता है। जुगाली करने वाले सभी पशुओं में तो ये नितान्त आवश्यक है क्योंकि ये काफी मात्रा में घास एवं चारा आदि खाते हैं। इनमें से कुछ अस्थायी जीवाणु है जो कि लाभदायक होते हैं जो कुछ आवश्यक परिवर्तन करके आहार नली में समूहों में उपनिवेश करने लगते हैं। इसलिए सभी पशुओं व मुर्गियों को प्रोबॉयोटिक खिलाने की सख्त जरूरत है; विशेषकर दुधारू पशुओं के लिये प्रोबॉयोटिक का खास महत्व देखा गया है।

15 पशुओं की प्रमुख बीमारियाँ एवं उनसे बचाव के उपाय

बी.एस. मीना[1], बच्चू सिंह[2], आर.के. मीना[3] एवं रामकिशन मीणा[4]

1. प्रस्तावना
2. पशु के बीमार होने के कारण
3. बीमार पशु की पहचान
4. बीमार पशु के कुछ विशेष लक्षण
5. पशुओं में बीमारियों की रोकथाम

1. प्रस्तावना

अच्छा स्वास्थ्य पशु हो या मानव सबके लिए आवश्यक होता है। बेहतर दुग्ध उत्पादन के लिए डेयरी पशुओं का स्वस्थ रहना बेहद जरूरी है। किसी भी पशु की शारीरिक संरचना या शरीर प्रक्रिया में परिवर्तन की स्थिति को बीमारी कहते हैं। पशुओं की बीमारियों से पशुपालकों को बेहद नुकसान होता है क्योंकि उनके उत्पादन में भारी कमी आ जाती है। गांवों में अधिकतर पशु दवाओं एवं चिकित्सा सुविधाओं की कमी की वजह से मर जाते हैं। इसलिए यह जरूरी है की पशुओं को बीमार होने से बचाया जाए। प्रत्येक पशुपालक को उन सारे नियमों या उपायों को जानना चाहिए जिससे वो अपने पशुओं को स्वस्थ रख सकते हैं तथा रोगों से उनका बचाव कर सकते हैं।

2. पशु के बीमार होने के कारण

- जीवाणुओं / विषाणुओं का संक्रमण
- पेट के कीड़ों (कृमि) का होना
- संक्रमित आहार / दूषित पानी से
- आहार मे पोषक तत्वों की कमी / असंतुलित आहार
- गलत ढंग से पशु का पालन पोषण

3. बीमार पशु की पहचान

- प्रत्येक पशुपालक को एक स्वस्थ पशु की आदतों तथा उसके व्यवहार को अच्छी तरह परखना चाहिए तथा बीमार पशु को पहचानने की क्षमता विकसित करनी चाहिए।
- पशु की बीमारी की पहचान उसके लक्षणों तथा बीमारी के इतिहास तथा विभिन्न परीक्षण विधियों पर निर्भर करती है।

4. बीमार पशु के कुछ विशेष लक्षण

- रोगी पशु सिर नीचे करके खड़ा रहता है और समूह से अलग रहना पसंद करता है।
- रोगी पशु के चलने का तरीका बदल जाता है।
- रोगी पशु आहार लेना कम कर देता है या बिल्कुल नहीं खाता है और अक्सर जुगाली भी नहीं करता है।
- रोगी पशु का तापक्रम सामान्य (37.5° C से 39.5° C) से ज्यादा या कम होता है।
- रोगी पशु की त्वचा खुरदरी और शुष्क हो जाती है।
- आँखें निश्तेज, धंसी हुई, स्थिर या घूरती हुई महसूस होती है।
- गोबर दुर्गंधमय तथा पतला हो जाता है। कुछ बीमारियों में गोबर सख्त भी हो जाता है।
- मादा की योनि से असामान्य स्त्राव गिरने लगता है।

[1-4]कृषि विज्ञान केन्द्र, करोली (राजस्थान)। ई–मेलः kvk.hnd.karauli@gmail.com; Mobile: 94142-68348

- पशु की उत्पादन क्षमता बेहद घट जाती है।
- मादा पशु गर्मी में नहीं आती है या गर्भधारण नहीं कर पाती है।
- पशु बेहद कमजोर हो जाता है और लंगडाने लगता है।
- पशुपालकों को ध्यान देना चाहिए कि कहीं उसके पशु की सांस तेज तो नहीं चल रही, पशु कोई असामान्य आवाज तो नहीं निकाल रहा है, कोई दर्द तो महसूस नहीं कर रहा है। सभी लक्षण बीमार पशु के है।

उपरोक्त कोई लक्षण दिखाई दे रहे हैं तो पशुपालक को तुरन्त पशु चिकित्सक से सम्पर्क करना चाहिए।

5. पशुओं में बीमारियों के रोकथाम के निम्नलिखित उपाय हैं

संगरोधः दूसरे फार्म या राज्य से आने वाले पशुओं में संक्रामक रोग हाने की आशंका रहती है। उन्हें स्वस्थ पशुओं से कम से कम 30 दिन अलग रखना चाहिए। अतः उन पशुओं को अलग रखने की प्रक्रिया को संगरोध कहा जाता है। अगर बाहर से लाये गए पशुओं में कोई जीवाणु या विषाणु का संक्रमण है तो 30 दिन में रोग के लक्षण प्रकट हो जायेंगे। अगर उन 30 दिनों में पशु स्वस्थ रहता है तो उसे सामान्य समूह में मिलाना चाहिए।

टीकाकरण

- विभिन्न प्रकार की संक्रामक बीमारियों से बचाव के लिए पशुओं का टीकाकरण किया जाता है।
- एक रोग का टीका केवल उसी रोग के लिए प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करता है।
- टीका एक एंटीजेन है जिसमें जीवित, क्षीणीत अथवा मृत जीवाणु या विषाणु होते हैं। टीका लगााने के कुछ समय बाद उस रेाग से प्रतिरक्षा प्रदान करने वाले प्रतिरक्षी उत्पन्न हो जाते हैं।
- प्रत्येक टीके का प्रतिरक्षा काल अलग–अलग होता है। कुछ रोगों में मजबूत प्रतिरक्षा के लिए प्रथम टीके के पश्चात् अनूवर्धक मात्रा लगाना पड़ता है।

डेयरी पशुओं का टीकाकरण

रोग का नाम	टीका लगाने का समय	रोग प्रतिरोधकता
गलघोंटू	पहला टीका 6 माह की उम्र में एवं वर्षा ऋतु से पहले प्रतिवर्ष	1 वर्ष
लंगडी रोग/ जहरबाद	पहला टीका 6 माह की उम्र में एवं वर्षा ऋतु से पहले प्रतिवर्ष	1 वर्ष
गिल्टी	पहला टीका 6 माह की उम्र में एवं वर्षा ऋतु से पहले प्रतिवर्ष	1 वर्ष
खुरपका मुंहपका	पहला टीका 6 माह की उम्र में एवं वर्षा ऋतु से पहले प्रतिवर्ष	6 महीने
थेलेरियोसिस	पहला टीका 6 माह की उम्र में एवं वर्षा ऋतु से पहले प्रतिवर्ष	1 वर्ष

- पशुपालकों को ये ध्यान रखना चाहिए की टीकाकरण रोग के फैलने से पहले करना चाहिए। अगर क्षेत्र में रोग फैल गया है तो टीकाकरण नहीं करना चाहिए।
- डेयरी पशुओं के कुछ प्रमुख संक्रामक रोगों के विरूद्वटीकाकरण कार्यक्रम प्रस्तुत सारणी में दिया गया है।
- **अन्तः कृमि नियंत्रणः** पशुओं के शरीर में कई तरह के अन्तः कृमि पाए जाते हैं जो विभिन्न प्रकार की बीमारियों को फैलाते हैं। इनके नियंत्रण के लिए पशुपालकों को निम्नखित कार्य करने चाहिए।
- पशु चिकित्सक से सलाह लेकर पशुओं को प्रत्येक तीन महीनों के अंतराल पर कृमिनाशक दवा पिलानी चाहिए। इन दवाओं को मानसून से पहले तथा बाद में जरूर देना चाहिए।
- नीम वाले क्षेत्रों में पशुओं में नियमित रूप से कृमिहीन करना चाहिए।
- पशु आवास से मल–मूत्र एवं कूड़ा करकट रोजाना हटाना चाहिए।
- पशु आवास के आसपास स्थित गड्डों को पाट देना चाहिए ताकि मक्खी, मच्छर इत्यादि न पनप सके। पशुशाला के निकट उपस्थित गंदे तालाबों, नदियों व नालों का पानी पशु को पीने न दिया जाए। उन्हें पीने के लिए हमेशा स्वच्छ पानी ही उपलब्ध कराया जाए।
- चारागाहों एवं खेतों में जहां तक संभव हो मनुष्य मल विसर्जन न करें ।
- **बाह्य परजीवी नियंत्रणः** यह परजीवी पशुओं की त्वचा में पाए जाते हैं, उन्हें काटकर या खून चूसकर हानि पहुँचाते हैं तथा कुछ संक्रामक रोगों के जीवाणुओं को फैलाते हैं। इनमें मक्खी, मच्छर, किलनी, जूँ, पिस्सू तथा कीट प्रमुख है। ये गंदे, अंधकारमय या नमीयुक्त स्थानों पर अधिक पाए जाते हैं। इनके नियंत्रण के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिएः
- पशुओं के ऊपर कीटनाशी दवाओं को छिड़कना चाहिए। ये ध्यान रखना चाहिए कि ये दवाएं विषैली होती है अतः इनका प्रयोग बेहद कम मात्रा में सावधानीपूर्वक करना चाहिए। 2 मि.ली. ब्यूटोक्स (डेल्टामेथरिन) एक लीटर पानी में डालकर पशुओं पर उसके घोल का छिड़काव करना चाहिए। एक पशु के लिए 3–4 लीटर घोल पर्याप्त होता है।
- पशुओं को नियमित रूप से खरैरा करना चाहिए तथा उन्हें नहलाकर साफ–सुथरा रखना चाहिए।
- पशु आवास की दीवारों, छतों एवं कोनों में उपस्थित मकडी के जालों, बरें, ततैया आदि के छत्तों को काटकर कीटनाशी दवा छिडकनी चाहिए।
- पशु आवास को हमेशा साफ–सुथरा व हवादार रखना चाहिए जिसमें सूर्य की पर्याप्त रोशनी पशु आवास में आती रहें।

इन सबके अलावा सामान्य स्वास्थ्य प्रबंधन के कुछ नियमों का भी प्रत्येक पशु पालक को पालन करना चाहिए जो निम्नलिखित हैः–

- पशु खरीदते समय उनके स्वास्थ्य के विषय में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए तथा हमेशा स्वस्थ पशु ही खरीदने चाहिए।
- समय–समय पर पशु की संक्रामक बीमारियों की जांच कराते रहना चाहिए।
- चारागाह स्वच्छ एवं जीवाणुरहित होना चाहिए।
- पशुओं को अत्यधिक गर्मी तथा सर्दी से बचाना चाहिए।
- संक्रमित रोगों से पीड़ित पशुओं को तुरन्त स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए तथा एक पशु पारिचारक को उनकी विशेष देखभाल के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए।
- शवों व संक्रमित पदार्थों को ठीक से जला या गाड़ देना चाहिए।

16

भैंसों में सुप्त मदकाल की समस्या

बी.एस. मीना[1], बच्चू सिंह[2], आर.के. मीना[3] एवं रामकिशन मीणा[4]

1. प्रस्तावना
2. डेयरी पशुओं में ब्रूसेल्लोसिस की समस्या
3. डेयरी पशुओं में जेर रूकने की समस्या

1. प्रस्तावना

देश के कुल दुग्ध उत्पादन में भैंस के दूध की भागीदारी 56 प्रतिशत है, इसके बावजूद भारत में भैंसों की प्रजनन क्षमता बेहद कम है जो पशुपालकों के लिए आर्थिक क्षति का कारण बनती है। सुप्त मदकाल या चुप्पा भैंस की प्रमुख प्रजनन समस्या है जो उनकी उत्पादन और पुनरूत्पादन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। कई भैंसें सुप्त प्रजनक होती है। मदकाल में रहने के बावजूद इनमें मदकाल या गर्मी के लक्षण स्पष्ट रूप से प्रदर्शित नहीं होते हैं। भैंसों की इस अवस्था को सुप्त मदकाल या चुप्पा गर्मी कहा जाता है।

अनेक शोधों से यह ज्ञात हुआ है की इनके अंडाशय के ग्राफिन फॉलिकन का विकास एवं डिम्बक्षरण बिल्कुल सामान्य होता है लेकिन फिर भी मद के लक्षणों की अभिव्यक्ति बेहद कम होती है। भैंसों में यह समस्या ग्रीष्म ऋतु में अधिक देखी गयी है। भैंस में वातावरण का तापमान एवं आद्रता की वृद्धि अनुरूप अपने आप को ढालने की क्षमता बेहद कम होती है। अधिक तापमान की वजह से ग्रीष्म ऋतु में भैंसें अधिकतर गर्मी की वजह से परेशान रहती हैं और इनमें अक्सर मदकाल या तो अनुपस्थित रहता है या उसकी अभिव्यक्ति बेहद कम होती है। ऐसी भैंस रंभाने और दूसरे भैंसों पर चढ़ने जैसे विशेष लक्षण भी प्रदर्शित नहीं करती है। सुप्त मदकाल की वजह से पशुपालक को भैंस के सही मदकाल का पता नहीं चल पाता है। और गलत समय पर गर्भाधान कराने से भैंस रिपीट ब्रीडिंग (बार–बार फिरना) का शिकार हो जाती है। सुप्त मदकाल की दर संगठित डेयरी फार्म एवं ग्रामीण क्षेत्रों क्रमशः 10–12 एवं 30–40 प्रतिशत तक है।

प्रबंधन

- भैंसों के सही समय पर मदकाल में आने और मदकाल के लक्षणों की सही अभिव्यक्ति के लिए संतुलित आहार की बेहद महत्वपूर्ण भूमिका है। भैंस को एक ही प्रकार का दाना न देकर संतुलित आहार देना चाहिए।
- भैंस के सही मदकाल का पता लगाने के लिए बधिया भैंसे को हर चार घंटे में घुमाना चाहिए। बधिया भैंसा की यौन कामेच्छा बेहद अच्छी होनी चाहिए।
- जिस भैंस के गर्मी की पहचान बधिया भैंसा कर चुका हो उसे उस जगह से हटा देना चाहिए ताकि बधिया भैंसा को गर्मी में आई हुई अन्य भैंसों को पहचानने का अवसर बढ़ जाए। ये हमेशा प्रयास किया जाना चाहिए कि गर्मी की पहचान एवं बधिया भैंसों को घुमाने का काम शाम 6 बजे से लेकर सुबह 6 बजे के बीच जरूर हो क्योंकि 80 प्रतिशत भैंसें इसी समय गर्मी में आती है।
- मदकाल की पहचान प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा की जानी चाहिए जो पूरी लगन और मेहनत से गर्मी की पहचान करें।
- मादा भैंस के आसपास एक नर भैंसे की उपस्थिति मद व्यवहार को प्रोत्साहित करती है। यह सुप्त मदकाल का बेहद सफल प्रबंधन है।

[1–4]कृषि विज्ञान केन्द्र, हिण्डौन (करोली) ई–मेलः kvk.hnd.karauli@gmail.com; Mobile: 94142-68348

- पशुपालकों को ध्यान रखना चाहिए कि योनि की सूजन एवं बार–बार मूत्र त्याग करना भैंस में मद का एक स्पष्ट लक्षण है।
- भैंसों में मद के लक्षण सुबह–सुबह और देर शाम अथवा रात्रि के समय ठन्डे तापमान के वक्त अधिक स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होते हैं।
- ग्रीष्म ऋतु में उन्हें दो बार नहलाना चाहिए और उनके शरीर पर 3–4 बार पानी का छिड़काव करना चाहिए। उन्हें लू से बचाना चाहिए तथा ठण्डे स्थान पर बाँधना चाहिए। उन्हें रोजाना दाने के साथ 30–40 ग्राम खनिज मिश्रण देना चाहिए।
- ग्रीष्म ऋतु के दौरान पशु के खाने की मात्रा कम हो जाती है। उनकी शारीरिक जरूरतों को ध्यान में रखते हुए राशन की गुणवत्ता को बढ़ाया जाना चाहिए।
- बड़े संगठित डेयरी फार्म में मिस्ट शीतलन प्रणाली का इस्तेमान किया जाता है जो बेहद लाभकारी और सफल सिद्ध हुआ है। भैंसों को दिन में दो बार ठण्डे पानी के फव्वारे के नीचे रखना चाहिए।
- पशु चिकित्सक की सलाह लेकर भैंस को समय–समय पर पेट के कीड़ों की या कृमिनाशक दवा देते रहना चाहिए।
- भैंस को समय–समय पर पशु चिकित्सक से जांच कराना चाहिए। मलाशय परिक्षण में अंडाशय में परिपक्व ग्राफियन पुटक मिलना एवं गर्भाशय में कड़ापन रहना गर्मी का स्पष्ट संकेत होता है।

2. डेयरी पशुओं में ब्रूसेल्लोसिस की समस्या

1. ये गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सुकर एवं कुत्तों में फैलने वाली एक संक्रामक बीमारी है।
2. ये एक प्राणीरूजा बीमारी है जो पशुओं से मनुष्यों में फैलती है।
3. इस बीमारी से ग्रस्त पशु में 7–9 महीने के गर्भकाल में गर्भपात हो जाता है।

कारण

1. गाय, भैंस में ये रोग ब्रूसेल्ला एबोरटस नामक जीवाणु द्वारा होता है। ये जीवाणु गाभिन पशु के बच्चेदानी में रहता है तथा अंतिम तिमाही में गर्भपात करता है।

संक्रमण का मार्ग

1. संक्रमित पदार्थ के खाने से।
2. जननांगों के स्त्राव के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क से।
3. रोगी पशु के कच्चा दूध पीने से।
4. योनि स्त्राव से संक्रमित चारे के प्रयोग से।

लक्षण

1. इस रोग में पशुओं में गर्भावस्था की अंतिम तिमाही में गर्भपात हो जाता है।
2. पशुओं में जेर का रूकना एवं गर्भाशय की सूजन एवं नर पशुओं में अंडकोष की सूजन इस रोग के प्रमुख लक्षण है। पैरों के जोड़ों पर सूजन आ जाती है जिसे हाइग्रोमा कहते हैं।
3. मनुष्यों को इस रोग में तेज बुखार आता है जो बार–बार उतरता और चढ़ता रहता है तथा जोड़ों और कमर में दर्द भी होता रहता है।

निदान

1. गर्भपात के बाद चमड़े जैसा जेर।
2. रोगी पशु के योनि स्त्राव /दूध/रक्त की जांच।
3. रोगी मनुष्य के वीर्य की जांच।

प्रबंधन

1. पशुओं में ब्रूसेल्लोसिस की कोई प्रमाणित चिकित्सा नहीं है।
2. स्वस्थ गाय, भैंसों के बच्चों (बछड़े/बछड़ीयों एवं कटड़े/कटड़ीयों) में 3–6 माह की आयु में ब्रुसेल्ला वैक्सीन से टीकाकरण करवाना चाहिए।
3. नये खरीदे गये पशुओं को ब्रूसेल्ला संक्रमण की जांच किये बिना अन्य स्वस्थ पशुओं के साथ कभी न रखें।
4. गर्भपात से उत्पन्न मृत नवजात एवं जेर को चूने के साथ मिलाकर गहरे जमीन के अन्दर दबा देना चाहिए जिसे जंगली पशु एवं पक्षी उसे फैला न सके।
5. अगर पशु का गर्भपात हुआ है उस स्थान को फिनाइल के द्वारा विसंक्रमित करना चाहिए।
6. रोगी मादा पशु के कच्चे दूध को स्वस्थ नवजात पशुओं को नहीं पिलाना चाहिए।
7. प्रसव के लगभग 3–4 सप्ताह उपरान्त जीवाणु बच्चेदानी को छोड़कर थन के लिम्फनोड में निवास करता है जो दूध के साथ आता रहता है। अतः दूध को अच्छे प्रकार से उबाल कर पीना चाहिए।
8. गर्भित पशुओं को ब्रूसेल्लोसिस का टीका नहीं लगवाना चाहिए।

3. डेयरी पशुओं में जेर रूकने की समस्या

सामान्यतः गाभन पशुओं में ब्याने के 3–6 घंटे के अन्दर जेर स्वतः बाहर निकल आती है, परन्तु अगर ब्याने के 8–12 घंटे के बाद भी जेर नहीं निकला है तो उस स्थिति को जेर को रूकना अथवा रिटेंड प्लेसेंटा कहा जाता है।

जिन असामान्य स्थितियों में जेर अटक जाता है वो निम्नलिखित हैं :–

1. असामान्य प्रसव
2. गर्भपात
3. संक्रामक यौन रोग जैसे ब्रूसेल्लोसिस एवं केम्पइलोबेकटेरिओसिस इत्यादि
4. पोषक तत्वों का असंतुलन
5. समय से पहले प्रसव
6. कष्टमय प्रसव

लक्षण

1. जेर घुटनों तक लटकी रहती है
2. पशु के योनि द्वार से बदबुदार स्त्राव निकलता रहता है
3. तापमान एवं सांस की गति में वृद्धि हो जाती है
4. भूख की कमी जेर के सही समय पर न निकलने से पशुपालक को बेहद हानि होती है। प्रायः पशु के गर्भाशय मे संक्रमण हो जाता है और गर्भाशय शोथ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। गर्भाशय के सामान्य अवस्था में आने में देर हो जाती है, प्रसव उपरान्त मद अंतराल बढ़ जाता है और पशु बार–बार फिरने या रिपीट ब्रीडिंग का शिकार हो जाता है।

चिकित्सीय प्रबंधन

1. जेर के अटक जाने के चिकित्सीय प्रबंधन में बुनियादी लक्ष्य यही रहता है की मादा पशु के जननांग जल्द से जल्द अपनी सामान्य स्थिति में वापस आ जाए।
2. अटके हुए जेर को योनि मार्ग में डालकर धीरे–धीरे खींचकर निकालने का तरीका कई सालों से प्रयोग किया जाता रहा है लेकिन कई शोधों से ज्ञात हुआ है कि इससे गर्भाशय की नाजुक परत को बेहद नुकसान पहुँचता है। कई बार गर्भाशय में सूजन एवं संक्रमण हो जाता है।
3. विदेशों में जेर के अटकने का सबसे सफल उपचार है – कोई उपचार ना करना। जेर को यथावत छोड़ दिया जाता है जो बाद में गर्भाशय के संकुचन एवं गुरूत्वाकर्षण शक्ति से अपने आप बाहर निकल आता है। इस तकनीक को भारत के गर्म वातावरण में अपनाना उचित नहीं है।
4. हमारे वातावरण में सबसे बेहतर उपाय यही है कि योनि के रास्ते बाँया हाथा डालकर मासान्कुर एवं दलों को छुडाया जाए दाएँ हाथ से जेर का जितना हिस्सा आसानी से निकलता है उसे धीमे–धीमे निकाला जाए । अगर पूरी तरह जेर नहीं निकल पा रहा हो तो खींचतान नहीं करनी चाहिए।
5. जेर को निकालने के बाद 3–5 दिन तक अंतर्पेशीय मार्ग से स्ट्रेपटोपेनिसिलिन या टेट्रासाईक्लीन एंटी–बायोटिक का इन्जेक्शन लगाना चाहिए।
6. क्लोर फेनारामिन मेलियेट का इंजेक्शन 0.5 मि.ग्रा. किलो शारीरिक वजन के अनुसार पाँच दिन तक लगाना चाहिए।

बचाव

1. ब्याने से 1–2 माह पूर्व दाना मिश्रण के साथ लगभग 150–250 ग्राम सरसों अथवा मूंगफली का तेल रोजाना देना चाहिए। यह जेर के सही समय पर निकलने में सहायता प्रदान करता है।
2. ब्याने के तुरंत बाद पशु को आधे से एक किलो गुड़ व गेहूं का दलिया देना चाहिए, इससे जेर के निकलने में मदद मिलती है।
3. ये पाया है गया है कि गर्भावस्था के आखिरी महीने में अगर पशु को सेलेनियम और विटामिन ई दिया जाए और हल्का व्यायाम कराया जाए तो जेर बिलकुल सही समय पर निकल जाता है।

17

घर के पिछवाड़े मुर्गीपालन में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग

बी.एल. डाँगी[1] एवं प्रदीप पगारिया[2]

1. प्रस्तावना
2. उचित जनन-द्रव्य का प्रयोग
3. संतुलित आहार सम्पूरण
4. देशी मुर्गियों का कुडक (ब्रूडी) होना
5. पूर्ण संगोत्र संगम
6. बीमारियों की रोकथाम
7. प्रशिक्षण

1. प्रस्तावना

विकासशील देशों में गरीबी, भूखमरी और कुपोषण जैसी हानिप्रद समस्याओं को दूर करने में घर के पिछवाड़े मुर्गीपालन की महत्वपूर्ण सार्वभौमिक पहचान बनी है। लम्बे समय से विकासशील देशों में ग्रामीण कुक्कुट विकास कार्यक्रम प्रगति में है और उनके परिणाम लाभ तथा हानि दोनों ही रहे हैं।

आधुनिक मुर्गीपालन के जनक भारतवर्ष में घर के पिछवाड़े मुर्गीपालन का कार्य आदिकाल से होता रहा है। मुर्गीपालन की यह पद्धति सबसे सरल है जिसे छोटे और लघु कृषक, भूमिहीन मजदूर तथा अशिक्षित ग्रामीण महिलायें एवं बच्चें अपना सकते हैं। इस पद्धति में प्रायः 5 से 20 मुर्गियों का छोटा सा समूह एक परिवार के द्वारा पाला जाता है जो घर के आँगन, पिछवाड़े तथा गली–कूचों में अन्न के गिरे दानें, झाड–फूसों के बीज, कीड़े–मकोडे, घास की कोमल पत्तियाँ तथा घर की जूठन इत्यादि खाकर अपना पेट भरता है। केवल प्रतिकूल वातावरण में निम्न कोटि का थोड़ा सा अनाज खिलाने की जरूरत पड़ती है। इसके रात्रि विश्राम तथा शिकारियों से बचाव के लिए घर के टूटे–फूटे भाग काम में आते हैं या बाँस की पुरानी टोकरी इत्यादि काम में लाये जाते हैं। इस प्रकार उनके रखरखाव और खाने–पीने का कोई खर्च नहीं करना पड़ता है। अण्डे और माँस बिना किसी लागत के उपलब्ध होते हैं। अण्डे व मांस का उत्पादन होने से घर के सदस्य इसे खाकर कुपोषण से बचते हैं तथा बचे हुए अण्डों और माँस से छोटी परन्तु नियमित आय होती है।

पिछले दो–तीन दशकों में घर के पिछवाड़े मुगीपालन में काफी कमी आई है। इसका मुख्य कारण आज का बदलता हुआ परिवेश है। जनसंख्या की दिनों–दिन वृद्धि घर के पिछवाडे और आँगन को सीमित करती जा रही

[1–2]कृषि विज्ञान केन्द्र, दांता–बाड़मेर (राजस्थान)। ई–मेलः bldangi_2007@yahoo.co.in; Mobile: 98878-01210

है। गली–कूचों तथा आंगन का पक्कीकरण, कीटनाशक तथा बहुफसलीय उत्पादन पद्धति से कीड़े–मकोडें तथा फसलों के गिरे दानों की उपलब्धता दिनों–दिन घटती जा रही है। अतः आज के बदलते हुए परिवेश में परम्परागत देशी मुर्गीपालन में आवश्यक सुधार लाने की जरूरत है। इस पद्धति की कमियाँ तथा उसका निवारण निम्नलिखित हैं:–

2. उचित जनन-द्रव्य का प्रयोग

हजारों वर्षों से प्राकृतिक चुनाव द्वारा स्थानीय वातावरण के अनुकूल, आहार प्रबन्ध के प्रत्याबल तथा उष्णकटिबंधीय बीमारियों के लिए प्रतिरोधी क्षमता वाले अज्ञातकुल के देशी पक्षियों का इस उत्पादन पद्वति में प्रयोग किया जाता रहा है। ग्रामीण परिस्थितियों के अन्तर्गत इन पक्षियों को उत्तम अण्डा व माँस स्वाद, अण्ड़े की मोटी परत, उच्चतम प्रसाधन क्षमता के साथ–साथ प्रभावशाली माता तथा बढ़वार हेतु कम देखभाल के गुणों के कारण कुक्कुट पालन हेतु स्वीकार किया जाता हैं, परन्तु इन पक्षियों की उत्पादन क्षमता तथा बढ़ोतरी दर काफी कम है। आज यह अत्यन्त आवश्यक है कि घर के पिछवाड़े मुर्गीपालन हेतु देशी पक्षियों की नस्ल में सुधार कर एक उत्तम नस्ल का जनन द्रव्य विकसित किया जाये। महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) द्वारा ग्रामीण उत्पादन पद्धतियों को ध्यान में रखते हुए देशी मुर्गी की संकर नस्ल विकसित की गई है, जिसका नाम ''प्रतापधन'' रखा गया है। यह नस्ल 150 से 165 अण्डा उत्पादित करने में सक्षम है। घर के पिछवाड़े पद्धति में इस नस्ल का प्रयोग काफी सफल साबित हुआ है, क्योंकि इनमें देशी मुर्गी के अधिकांश गुण उपलब्ध है।

3. संतुलित आहार सम्पूरण

दिन–प्रतिदिन पक्षियों को दाना चुगने के प्राकृतिक संसाधन कम होते जा रहे हैं। गाँवों की सड़कों का पक्का होना, रसोईघर अपशिष्ट सामग्री में कमी, मैदानों में बहु–फसल बोना तथा कीटनाशी व कृमिनाशी का बढ़ता प्रयोग। इस कारण पक्षियों हेतु आहार का सम्पूरण अत्यन्त आवश्यक है। विकसित जनन द्रव्यों के प्रयोग के साथ ही आहार की गुणवत्ता में सुधार भी जरूरी है। आमतौर पर मात्र मौसमी अनाज पक्षियों को खिलाने से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है। पक्षियों को मिश्रित प्रकार का अनाज खिलाना चाहिए और संभव हो तो आहार संतुलित करने हेतु संपूरक आहार के रूप में उन्हें प्रोटीन, मिनरल एवं विटामिन मिश्रण भी देना चाहिए। शाम के समय 30–40 ग्राम/पक्षी आहार प्रतिदिन देना उचित रहता है। यह मात्रा आस–पास उपलब्ध आहार संसाधनों के अनुसार घटाई या बढाई जा सकती है।

4. देशी मुर्गियों का कुडक (ब्रूडी) होना

यह देखा गया है कि लोग वर्ष भर मुर्गियों से चूजे लेते रहते हैं। इस पद्धति से मुर्गी अत्यन्त ब्रूडी हो जाती है। आमतौर से मुर्गी एक पकड़ में 10–12 अण्डे देती है और चूजों को सेने हेतु तैयार हो जाती है। अण्डे से चूजे निकलने के बाद मुर्गी एक माह तक उनकी देखभाल करती है और फिर अण्डे देने लगती है। इस प्रकार से एक वर्ष में यह क्रम चक्र 4–5 बार चलता है और कुल उत्पादन 50 से 60 अण्डा होता है। ब्रूडी होने से बचाने के लिए आवश्यक है कि अण्डों को प्रतिदिन हटा दिया जाये ताकि मुर्गी अण्ड़ों पर न बैठ सके। इस प्रकार वार्षिक उत्पादन में वृद्धि हो सकती है।

5. पूर्ण संगोत्र संगम

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि एक बार मुर्गी का जोड़ा खरीद लेने के बाद हर वर्ष घर में ही बच्चे निकाले जाते हैं। बहन–भाई के क्रास से बच्चे निकालना पूर्ण संगोत्र संगम (इन–ब्रीडिंग) का सबसे प्रभावशाली तरीका है, जिसके दुष्प्रभाव से अण्ड़ों की संख्या निषेचन तथा प्रस्फुटन में भारी कमी तथा बच्चों की मृत्युदर में काफी वृद्धि परिलक्षित होती है। अगर संभव हो तो पुराने स्टॉक को उचित संकर नस्ल से बदल देना चाहिये। अगर घर पर ही चूजे निकालना अपरिहार्य हो तो प्रयोग किये जाने वाले मुर्गे के स्थान पर दूसरे गाँव या क्षेत्र से प्रतिवर्ष नये कुक्कुट पालकों से मुर्गे लेकर बदल लेना चाहिये। इस विधि से विषम युग्म के कारण अण्डा उत्पादन, उर्वरता और प्रजनन क्षमता में वृद्धि के साथ–साथ चूजों की मृत्यु दर में कमी आती है।

6. बीमारियों की रोकथाम

ग्रामीण कुक्कुट पालकों के लिए कुक्कुट बीमारियों के प्रादुर्भाव के कारण होने वाली भारी मृत्यु दर एक तबाही है। घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन हेतु कुक्कुट बीमारियों का टीकाकरण, विशेषतः रानीखेत बीमारी के लिए आवश्यक है। परन्तु प्रत्येक गाँव में छोटी मात्रा में चूजों का संसेचन टीकाकरण कार्यक्रम के रास्ते में एक बड़ी बाधा है। चूजों का ससंक्रमण संसेचन टीकाकरण कार्यक्रम को सफल बनाने में

सहायता कर सकता हैं। पुराने चूजों को एक सप्ताह तक रानीखेत एफ–1 टीका दिया जा सकता हैं। अगर एक अथवा 2–3 गाँवों में अधिक मात्रा में चूजे निकलते हैं और इसके लिए टीका लगाने वाले को तुरन्त सूचना दी जाती है, ऐसी स्थिति में आसानी से अन्य प्रयोग किये जाने वाले टीकों सहित टीकाकरण सुचारू रूप से किया जा सकता है। उससे टीकाकरण पर आने वाला खर्च भी कम होता है। अतः पूरे वर्ष चूजे निकालने के स्थान पर सितम्बर से नवम्बर तथा फरवरी से मार्च के मध्य उचित महिनों में 2–3 बार चूजा निकालना चाहिए। इन महिनों में देशज मुर्गियों की उच्चतम उत्पादन करती है। जिससे सेने योग्य अण्डे काफी मात्रा में प्राप्त हो सकते हैं। समय–समय पर मुर्गी समूह को कीड़े मारने की दवा एवं कॉक्सीडिपोस्टेट से बचाव हेतु खुराक देने से बीमारियों की रोकथाम करने में मदद मिलती है, साथ ही समूह उत्पादन भी बढ़ जाता है।

7. प्रशिक्षण

घर के पिछवाड़े मुर्गीपालन करने वाले कृषकों को एक सप्ताह का प्रशिक्षण लेने से उन्हें मुर्गी समूह के प्रबन्ध एवं बीमारियों की रोकथाम हेतु वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग की जानकारी से भी अवगत कराया जा सकता है। वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग से घर के पिछवाड़े मुर्गीपालन में उल्लेखनीय सुधार की आशा की जाती है और यह विधि अपने पौषणिक स्तर एवं सामाजिक–आर्थिक सुधार करने में गरीब कृषक के लिए एक वरदान है।

18 डेयरी व्यवसाय–रोजगार एवं आर्थिक विश्लेषण

जे.एन. यादव[1], ए.के. चौहान[2], हरेन्द्र यादव[3] एवं वी.पी.एस. यादव[4]

1. प्रस्तावना
2. शोध विधि
3. परिणाम
4. निष्कर्ष

1. प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है यहाँ पर कृषि के साथ पशुपालन एक व्यवसाय के तौर पर अपनाया जाता है। भारत में विश्व की पशु संख्या का पाचवां भाग पाया जाता है और दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान रखता है इसका प्रथम स्थान पशु संख्या अधिक होने के कारण है न कि दुग्ध उत्पादकता के कारण। यहां पर प्रति पशु दुग्ध उत्पादन अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। सन् 2015–16 में देश में दुग्ध उत्पादन 155.5 मिलियन टन (डी.ए.एच.,डी. एवं एफ., भारत सरकार) हो गया है। भारत में दुग्ध उत्पादन की वृद्धि दर सन् 2013–14 में 6.26 प्रतिशत (आर्थिक सर्वेक्षण 2015–16) रही है। भारत में पशुधन क्षेत्र की विकास दर कृषि क्षेत्र से काफी अधिक है। भारत में डेरी व्यवसाय किसानों का एक सहायक व्यवसाय है जिसको भारत के करीब 63 प्रतिशत किसानों द्वारा किया जाता है। इस व्यवसाय द्वारा किसानों को वर्ष भर निरन्तर रोजगार मिलता रहता है। इसमें पुरूष, महिला एवं बच्चों की भागीदारी होती है। जिसमें महिलाओं का अहम योगदान है। एक आंकलन के अनुसार इस व्यवसाय में महिलाओं का योगदान करीब 50 प्रतिशत से अधिक आंका गया है। डेरी व्यवसाय द्वारा किसानों को ईधन, गोबर की खाद, पोषक तत्व, बुलक पावर इत्यादि मिलता है। गोबर की खाद खेतों की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होता है जिससे किसानों की जमीन उपजाऊ बनी रहती है। डेरी व्यवसाय अपनाने से किसानों को निरन्तर आय का स्त्रोत बना रहता है, और इस दिशा में एक आर्थिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

2. शोध विधि

इस शोध पत्र में हरियाणा से करनाल जिले का चयन किया गया एवं करनाल जिले से करनाल ब्लॉक का चयन किया गया। इस ब्लॉक से 30 दुग्ध उत्पादकों से आकड़ों का संग्रह किया और इसे तीन समूहों में पशु आधार पर विभक्त किया गया। (1) छोटे दुग्ध उत्पादक (एक दूध देने वाले पशु रखने वाले) (2) मध्यम दुग्ध उत्पादक (दो दूध देने वाले पशु रखने वाले) एवं (3) बड़े दुग्ध उत्पादन (तीन या इससे अधिक दूध देने वाले पशु रखने वाले) को रखा गया। इस प्रकार इन तीनों समूहों की अलग–अलग भांराकन औसत द्वारा गणना कि गई।

3. परिणाम

1. पशु के रखरखाव पर खर्च

तालिका 1 से यह स्पष्ट हो रहा है कि चारे व दाने पर प्रतिदिन छोटे दुग्ध उत्पादकों द्वारा औसतन व्यय रूपये 138.83, 130.62 मध्यम दुग्ध उत्पादक द्वारा एवं रूपया 122. 40 बड़े दुग्ध उत्पादक द्वारा खर्च किया जा रहा है। तालिका में दिखाया गया है कि अन्य मदों पर भी इसी प्रकार खर्च किया जा रहा है। इस प्रकार प्रति पशु रखरखाव की लागत

[1]प्रशिक्षण सहायक, कृषि विज्ञान केन्द्र, फरीदाबाद। ई–मेलः yadav224206@rediffmail.com; Mobile: 94169-17220
[2]प्रधान वैज्ञानिक, डी.ई.एस.एम. एवं डी.,एन.डी.आर.आई, करनाल
[3]वैज्ञानिक–बी., सी.टी.आर. एवं टी.आई., रांची
[4]पी.ई.एस.(विस्तार शिक्षा), कृषि विज्ञान केन्द्र, फरीदाबाद

तालिका 1. पशु के रखरखाव पर खर्च का विश्लेषण (2015-16)

मद	छोटे दुग्ध उत्पादन	मध्यम दुग्ध उत्पादन	बड़े दुग्ध उत्पादन
चारे एवं दाने पर खर्च	138.83	130.62	122.40
मजदूरी पर खर्च	21.78	20.80	18.95
टूट फूट एवं ब्याज पर व्यय	3.65	2.84	2.35
अन्य पर व्यय	3.45	2.75	2.28
कुल लागत	167.71	157.00	145.98
गोबर से आय	2.15	1.85	1.58
शुद्ध लागत	165.56	155.15	144.40

छोटे दुग्ध उत्पादक पर रूपया 167.71 मध्यम दुग्ध उत्पादक पर रूपया 157.00 एवं बड़े दुग्ध उत्पादक पर रूपया 145.98 का खर्च प्रतिदिन प्रति पशु आंका गया।

2. संकर गाय के दुग्ध उत्पादन का आर्थिक विश्लेषण

तालिका–2 में यह स्पष्ट किया गया है कि छोटे दुग्ध उत्पादक द्वारा 12.54 लीटर प्रतिदिन दुग्ध उत्पादन, मध्यम दुग्ध उत्पादक द्वारा 11.90 लीटर एवं बड़े दुग्ध उत्पादक द्वारा 11.25 लीटर दुग्ध उत्पादन प्रतिदिन प्रतिपशु किया गया। इस प्रकार छोटे दुग्ध उत्पादक को सकल आय रूपया 321.65, मध्यम दुग्ध उत्पादक को रूपया 342.12 एवं बड़े दुग्ध उत्पादक को रूपया 351.56 आय प्राप्त हुई। इस क्रम में इन दुग्ध उत्पादकों को रूपये 156.09, 186.97 एवं 207.16 क्रमशः छोटे, मध्यम एवं बड़े दुग्ध उत्पादकों को शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ। इस प्रकार शुद्ध लागत प्रति लीटर रूपया 13.20, 13.04 एवं 12.83 क्रमशः छोटे, मध्यम एवं बड़े दुग्ध उत्पादकों द्वारा व्यय किया गया। इस प्रकार दुग्ध उत्पादकों को शुद्ध आय रूपया 156–207 प्रति पशु प्रति दिन प्राप्त हुआ अगर हम इसके लाभ एवं व्यय अनुपात को देखें तो 1.94–2.43 के अनुपात में प्राप्त हो रहा है। अर्थात एक रूपया खर्च करने से दुग्ध उत्पादक को 2.43 रूपया तक प्राप्त हो रहा है। इस प्रकार डेयरी व्यवसाय किसानों को फसल के अतिरिक्त आर्थिक लाभ देता है और उसकी आर्थिक स्थिति संतुलन में बनाये रखने में सहयोग करता है।

तालिका 2. भैंस के दुग्ध उत्पादन का आर्थिक विश्लेषण (2015-16)

मद	छोटे दुग्ध उत्पादन	मध्यम दुग्ध उत्पादन	बड़े दुग्ध उत्पादन
प्रतिदिन शुद्ध लागत	165.56	155.15	144.40
प्रतिदिन दुग्ध उत्पादन	12.54	11.90	11.25
दुग्ध मूल्य प्रति लीटर	25.65	28.75	31.25
प्रतिदिन सकल आय	321.65	342.12	351.56
प्रतिदिन शुद्ध आय	156.09	186.97	207.16
शुद्ध लागत प्रति लीटर दुग्ध	13.20	13.04	12.83
लाभ एवं लागत अनुपात	1.94	2.21	2.43

3. दुग्ध व्यवसाय में रोजगार

तालिका 3 से यह स्पष्ट हो रहा है कि डेरी व्यवसाय किसानों को अतिरिक्त रोजगार का अवसर प्रदान करता है जब किसानों के पास फसल सीजन के समय रोजगार एवं वित्तीय साधन सिमट जाते हैं तो डेयरी व्यवसाय उनको रोजगार एवं वित्तीय स्थिति को संभाले रखने का काम करता है और उनके प्रतिदिन व्यय का भार उठाने में अहम भूमिका निभाता है। तालिका से स्पष्ट है कि एक वर्ष में लगभग 2671 घंटों का रोजगार प्रति परिवार प्राप्त होता है। इसमें 414 घंटें पुरूष को 1912 घंटे महिला को एवं 345 घंटे बच्चों को रोजगार मिलता है। अगर इस घंटे को प्रतिदिन में परिवर्तन किया जाए तो प्रति परिवार 333 दिन का प्रति व्यक्ति रोजगार मिलता है। इससे यह स्पष्ट हो रहा है कि एक वर्ष से अधिक का रोजगार एक आदमी को डेयरी व्यवसाय से मिलता है।

आकृति 1 दर्शाती है कि छोटे दुग्ध उत्पादक द्वारा प्रतिदिन चारे एवं दाने की लागत 88.78 प्रतिशत रही है। जबकि मजदूरी पर 12.98 प्रतिशत, टूट–फूट एवं ब्याज पर 2.18 प्रतिशत एवं अन्य मदों पर 2.06 प्रतिशत व्यय किया गया है।

आकृति 2 से स्पष्ट हो रहा है कि छोटे दुग्ध उत्पादक द्वारा प्रतिदिन चारे एवं दाने पर व्यय 83.19 प्रतिशत किया गया जो अन्य मदों से काफी अधिक है। अन्य पर व्यय क्रमशः इस प्रकार रहा। मजदूरी पर 13.25 प्रतिशत, टूट–फूट एवं ब्याज पर 1.81 प्रतिशत एवं अन्य मदों पर 1.75 प्रतिशत व्यय किया गया है।

आकृति 3 से स्पष्ट हो रहा है कि मध्यम दुग्ध उत्पादक द्वारा सबसे अधिक व्यय प्रतिदिन चारे एवं दाने पर किया गया जो 83.85 प्रतिशत है। अन्य मदों पर व्यय क्रमशः मजदूरी पर 12.98 प्रतिशत, टूट–फूट एवं ब्याज पर 1.61 प्रतिशत एवं अन्य मदों पर 1.56 प्रतिशत व्यय किया गया है।

तालिका 3. दुग्ध व्यवसाय द्वारा रोजगार के अवसर का एक विश्लेषण (2015-16)

मद	संख्या
पुरूष	414
स्त्री	1912
बच्चे	345
कुल	2671

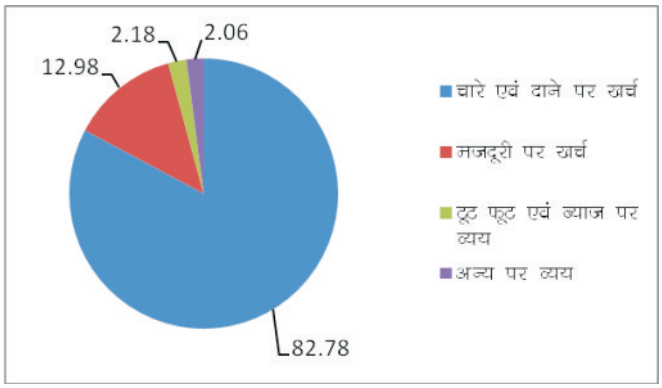

आकृति 1. छोटे दुग्ध उत्पादन

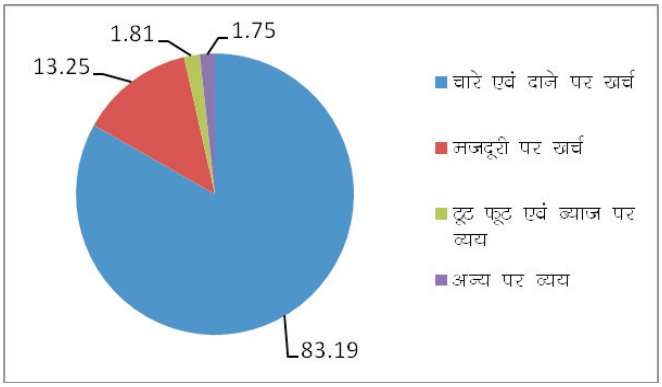

आकृति 2. मध्यम दुग्ध उत्पादन

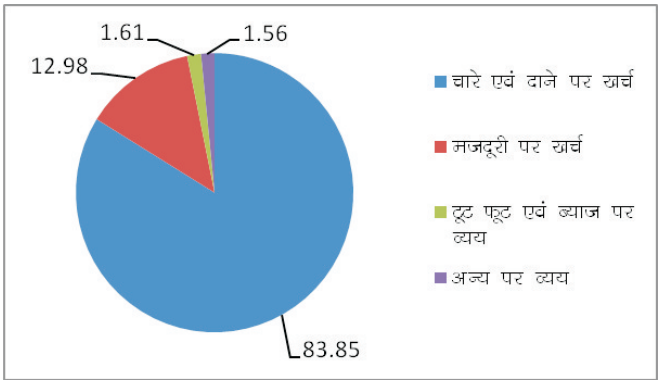

आकृति 3. बड़े दुग्ध उत्पादन

निष्कर्ष

उपरोक्त तालिकाओं से स्पष्ट है कि किसान डेयरी व्यवसाय अपना कर अपने परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारने में अहम भूमिका अदा कर सकता है। साथ ही साथ किसानों की आय दुगनी करने मे सहायक होगा। इसके साथ वर्ष भर रोजगार उपलब्ध होता रहेगा। इस पर अगर दूरगामी दृष्टि डाली जाए तो किसानों को डेरी व्यवसाय से गोबर की खाद प्राप्त होती रहेगी जिसके द्वारा किसान अपने खेतों की उपज बढ़ाने में सहायता ले सकता है और भूमि की कम होती हुई उर्वरा शक्ति को रोकने का काम भी कर सकता है जो आज की माँग है। कार्बनिक खेती इस व्यवसाय द्वारा पूरा किया जा सकता है।

संदर्भ

1. श्रचित विशनोई, पी.के. दीक्षित और उमाजेसवारी एम. (2014) उत्तराखण्ड राज्य के समतल एवं हिल मंडल में दुग्ध उत्पादन का आर्थिक विश्लेषण। इंडियन जनरल आफ डेरी साइंस, 67(6):523–530
2. ऋषि कान्ता सिंह के. एच. और चौहान ए. के.(2015) ग्रामीण मेघालय में सहकारी डेरयी का आय और रोजगार पर प्रभाव का विश्लेषण। इंडियन जनरल आफ डेरी साइंस, 68(2):173–179
3. पशुपालन, डेयरी एवं मत्स्यपालन विभाग, सांख्यिकी, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।

19 भारतीय डेयरी क्षेत्र के विकास का सामयिक विश्लेषण

आर.बी. काले[1], के. पोन्नूसामी[2], एम.एस. मीना[3] एवं एस.के. सिंह[4]

1. प्रस्तावना
2. दूध उत्पादन और प्रति व्यक्ति उपलब्धता में परिवर्तन
3. कुल पशु आबादी में वयस्क नर और मादा गायों की आबादी में परिवर्तन
4. वयस्क नर पशुओं की जनसंख्या और यंत्रीकरण (ट्रैक्टर) में परिवर्तन
5. वयस्क मादा पशुओं की आबादी में प्रजातियों के अनुसार परिवर्तन
6. डेयरी सहकारी समितियों का विकास

1. प्रस्तावना

भारतीय डेयरी सेक्टर उत्पादन में तेजी से बढ़ रहा है और धवल क्रांति के बाद इसमें महत्वपूर्ण बदलाव आया है। वर्ष 2015–16 के दौरान देश में दूध उत्पादन 155 मिलियन टन हुआ। धवल क्रांति के फलस्वरूप, भारतीय डेयरी सेक्टर में समय के साथ महत्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं विशेष रूप से संकरित गायों को बढावा, डेयरी सहकारी समितियों के विस्तार और दूध संग्रह और प्रसंस्करण में निजी क्षेत्र की बढ़ती हिस्सेदारी से दूध उत्पादन तथा व्यापार को बढावा मिला। हालांकि, धवल क्रांति की प्रमुख आलोचना का कारण दूध उत्पादन में क्षेत्रीय असमानता में वृद्धि है। प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता (322 ग्राम/दिन) जरुरत से अधिक होने के बावजूद, तेजी से शहरीकरण, बढ़ती जनसंख्या और प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोत्तरी के चलते दूध की भविष्य की मांग उत्पादन की तुलना में तेजी से बढ़ रही है। साल 2021–22 तक 200 से 210 मिलियन टन दूध की अनुमानित मांग को पूरा करने के लिए, भारत को ज्यादा दूध का उत्पादन करना होगा।

2. दूध उत्पादन और प्रति व्यक्ति उपलब्धता में परिवर्तन

ऑपरेशन फ्लड पूर्व समय में आबादी तेजी से बढ़ी और इसलिए दूध की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 130 ग्राम प्रति दिन से घटकर 112 ग्राम प्रति दिन रह गई और दूध उत्पादन में सिर्फ 0.74 प्रतिशत की वृद्धि हुई। ऑपरेशन फ्लड के दौरान, दूध उत्पादन 22 लाख टन से बढ़कर 1995–96 में लगभग 66.2 मिलियन टन हो गया, जो कि 4. 5 प्रतिशत की वृद्धि दर पर रहा। दूध की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 112 ग्राम प्रति दिन से बढ़कर 200 ग्राम प्रति दिन हो गई। ऑपरेशन फ्लड के बाद में, विकास दर 3.99 प्रतिशत पर घट गई और 1995–96 के दौरान दुग्ध उत्पादन 66.2 मिलियन टन से बढ़कर 2013–14 के दौरान 139.68 मिलियन टन हो गया। जबकि विकास दर 3.1 प्रतिशत थी। प्रति व्यक्ति की उपलब्धता घाटे से (200 ग्राम/दिन) से अधिशेष (307 ग्राम/दिन) हो गयी। जो कि प्रति दिन 280 ग्राम की आईसीएमआर की सिफारिश स्तर से अधिक थी।

3. कुल पशु आबादी में वयस्क नर और मादा गायों की आबादी में परिवर्तन

भारत में नर पशुओं का इस्तेमाल खेत के कार्य और प्रजनन के लिए किया जाता है। लेकिन कृत्रिम गर्भधारण के प्रचार के साथ तथा खेती में यंत्रों का प्रयोग बढ़ने से, नर पशुओं का उपयोग दिन–दर–दिन घट रहा है। ऑपरेशन

[1]वैज्ञानिक, भाकृअनुप–प्याज एवं लहसुन अनुसंधान निदेशालय, पूना, महाराष्ट्र। ई–मेलः rkrajivndri@gmail.com; Mobile: 887428-04790
[2]प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा
[3]प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर, राजस्थान
[4]निदेशक, भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर, राजस्थान

फ्लड से पहले, कुल आबादी में नर पशुओं का हिस्सा लगभग 50 प्रतिशत था, लेकिन 1972 के बाद पुरुष का हिस्सा घटकर 40 प्रतिशत हो गया और 2012 में यह 29 प्रतिशत तक घट गया। इसलिए, दुग्ध उत्पादन के लिए अधिक संसाधनों का इस्तेमाल वयस्क मादाओं के लिए हुआ और इससे दूध उत्पादन में वृद्धि हुई।

4. वयस्क नर पशुओं की जनसंख्या और यंत्रीकरण (ट्रैक्टर) में परिवर्तन

भारत में हरित क्रांति के बाद कृषि यांत्रिककरण विशेषकर ट्रैक्टर के इस्तेमाल में वृद्धि देखी गई। ट्रैक्टर की बिक्री 1963 में 11,407 से बढ़कर 2012 में 5,90,672 हो गई । इस अवधि में 1961 में वयस्क नर पशुओं में लगभग 80.2 मिलियन से 2012 में 54.1 मिलियन तक गिरावट देखी गई।

5. वयस्क मादा पशुओं की आबादी में प्रजातियों के अनुसार परिवर्तन

यह देखा गया है कि वयस्क मादा भैंसों का हिस्सा 1951 में 28 प्रतिशत से बढ़कर 2012 में 42 प्रतिशत हो गया है। हालांकि, वयस्क गायों का का हिस्सा 1951 में 72 प्रतिशत से घटकर 2012 में 58 प्रतिशत तक कम हो गया है। वयस्क गायों में देशी गोवंश का हिस्सा 1982 से 2012 के बीच 61 प्रतिशत से घटकर 42 प्रतिशत हो गया, जबकि वयस्क संकरित गायों का हिस्सा 4 प्रतिशत से बढ़ कर 16 प्रतिशत हुआ। इस अवधि में दूध उत्पादन में बढ़ोत्तरी संकरित गायों के बढ़े हुए हिस्से को दर्शाता है।

6. डेयरी सहकारी समितियों का विकास

ऑपरेशन फ्लड के पहले डेयरी सहकारी समितियों का नेटवर्क नहीं था। ऑपरेशन फ्लड के दौरान 72500 डेयरी सहकारी समितियों का एक मजबूत नेटवर्क स्थापित किया गया था। करीब 90 लाख से अधिक दूध उत्पादक सहकारी नेटवर्क में शामिल हुए। औसत दूध की खरीद प्रति दिन लगभग 11 मिलियन किलोग्राम थी। 1996 से 1996 तक दूध विपणन 100.20 लाख लीटर प्रति दिन था। 1994 से 2014–15 के दौरान करीब 93340 दूध सहकारी समितियों की स्थापना हुई थी, लेकिन सहकारी समितियों में अतिरिक्त सदस्यता 61.36 लाख थी जो की ऑपरेशन फ्लड की अवधि के मुकाबले कम थी। यह संगठित दूध विपणन क्षेत्र में निजी क्षेत्र के प्रवेश के कारण हो सकता है।

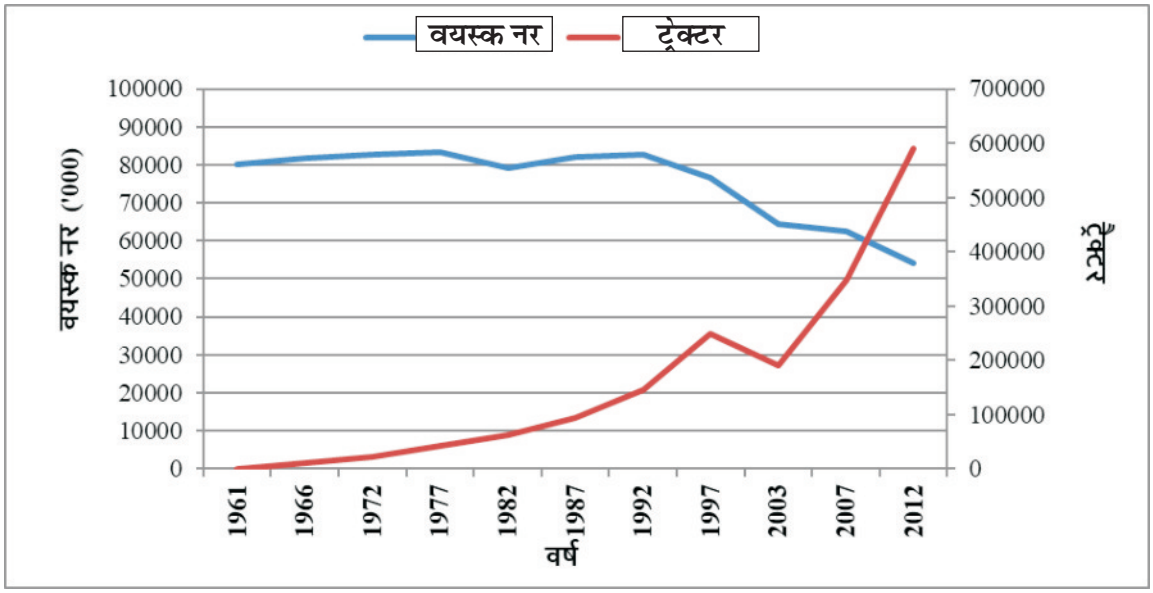

लेखाचित्र 1. वयस्क नर पशुओं की जनसंख्या और यंत्रीकरण

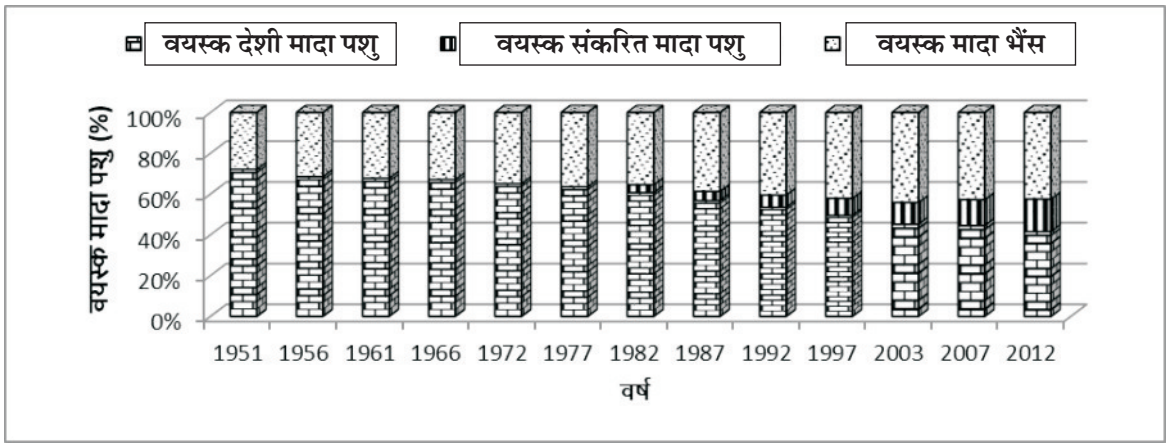

लेखाचित्र 2. वयस्क मादा पशुओं की आबादी में प्रजातियों के अनुसार परिवर्तन

इस प्रकार से संकरित गायों को बढावा, पशुधन की जनसंख्या में परिवर्तन, डेयरी सहकारी समितियों के विस्तार और दूध संग्रह और प्रसंस्करण में निजी क्षेत्र की बढ़ती हिस्सेदारी आदि भारत में दूध उत्पादन में वृद्धि के कारक है। इसलिए डेयरी क्षेत्र में इन परिवर्तनों से पता चलता है कि डेयरी पारम्परिक से व्यावसायिक उद्यम तक पहुंच गई है और वैश्वीकरण के युग में डेयरी क्षेत्र में उचित योजना दूध उत्पादन को बढ़ाने में मददगार साबित होगी ।

खंड–4

20 फलों के जैम एवं मुरब्बे तैयार करने की विधियां

रितु सिंह[1]

1. प्रस्तावना
2. जैम बनाने की विधि
3. चीज बनाने की विधि
4. मुरब्बा बनाने की विधि

1. प्रस्तावना

जैम एवं मुरब्बे ज्यादा चीनी द्वारा परिरक्षित किए जाते हैं। इनमें चीनी की मात्रा कम से कम 68 प्रतिशत होती है क्योंकि चीनी के इतने गाढ़ेपन में जीवाणु पैदा नहीं होते हैं तथा नष्ट हो जाते हैं। इनमें सब्जी व फल की वास्तविक सुगन्ध तथा स्वाद बना रहता है। जिन फलों में पेक्टिन कम मात्रा में हो उनका जैम बनाने के लिए उनके गूदे में बाजार में मिलने वाला पेक्टिन पाउडर मिला सकते हैं।

2. जैम बनाने की विधि

जैम लगभग सभी प्रकार के फलों और गाजर व टमाटर से बनाया जा सकता है, लेकिन अच्छा जैम उन्हीं फलों से बनता है जिनमें पेक्टिन पर्याप्त मात्रा में होती है, क्योंकि यह जैम के जमने में सहायक होती है। जैम बनाने के लिए फल अथवा उसका पेस्ट चीनी के साथ मिलाकर गाढ़ा होने तक पकाया जाता है। विभिन्न फलों से जैम बनाने की सामग्री तालिका 1 में दी गई है।

अच्छे पके फल लें
(अकेला फल या मिश्रित फल)

↓

छीलकर, काटकर, बीज व गुठली (जहां आवश्यक हो) निकालें छोटे–छोटे टुकड़ों में काटें या कद्दूकस करें

↓

थोड़ा सा पानी डालकर पका लें तथा पेस्ट तैयार करें

↓

पेस्ट में चीनी डालकर कुछ देर पकाएं

↓

थोड़ा गाढ़ा होने पर सिट्रिक अम्ल (खटास) थोड़े से पानी में घोलकर गाढ़े पेस्ट में डालें तथा 5–10 मिनट तक जैम के गाढ़ा होने तक पकाएं (जब जैम को चम्मच से गिराने पर चादर सा बनने लगे तो समझें कि जैम तैयार है)

↓

गर्म–गर्म जैम को साफ बोतलों में भर दें, थोड़ा ठण्डा होने पर ढक्कन बन्द करें तथा शुष्क स्थान पर भण्डारित करें

3. चीज बनाने की विधि

फल परिरक्षण में फल के गूदे से बने एक विशिष्ट पदार्थ को पनीर या चीज कहते हैं। इसे चीनी द्वारा परिरक्षित किया जाता है। यह कराची हलवे की तरह लगती है। इसे अमरूद, सेब, आलू बुखारा आदि से तैयार कर सकते हैं। चीज बनाने की विधि जैम की तरह ही है। इससे अम्ल, मक्खन, नमक तथा रंग (इच्छानुसार) मिलाया जाता है। इसमें चीनी की मात्रा लगभग 75–80 प्रतिशत होती है। तैयार होने पर चीज को मक्खन चुपड़ी ट्रे या थाली में इस प्रकार फैलाएं कि लगभग 1 सेमी. मोटी परत बन जाए। ठण्डा होने पर टुकड़े काट मोमी कागज में लपेटें।

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ (गृह विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, उजवा, दिल्ली। ई–मेलः kvkujwa@yahoo.com; Mobile: 98185-50652

क्र.स.	सामग्री का नाम	मात्रा
1	गूदा	1.0 किग्रा.
2	चीनी	1.25 किग्रा.
3	मक्खन	70 ग्राम
4	सिट्रिक अम्ल	3 ग्राम
5	नमक	2 ग्राम
6	रंग	इच्छानुसार

4. मुरब्बा बनाने की विधि

फल एवं सब्जी से गाढ़े चीनी के घोल में बने शुष्क मुरब्बे बहुत लोकप्रिय हैं। इन्हें भी चीनी से परिरक्षित किया जाता है। चीनी की 68–70 प्रतिशत या इससे अधिक मात्रा हो जाने पर सूक्ष्म जीव नहीं पनपते तथा मुरब्बा काफी समय तक सुरक्षित रह सकता है। मुरब्बा, सेब, आम, आंवला, बेल, करौंदा, चेरी, अनन्नास आदि फलों तथा गाजर, पेठा, अदरक आदि सब्जियों से तैयार किया जाता है। शुष्क मुरब्बे को कैण्डी, क्रिस्टलीकृत एवं ग्लेज्ड फल भी कहते हैं।

अच्छे फल का चुनाव करें
↓
छीलें तथा काटें
↓
गोदें
↓
उबलते पानी या नमक के घोल में उपचारित करें
↓
बराबर की मात्रा में मिलाना तथा मुरब्बा पकाकर तैयार करना
↓
फलों को चीनी की चासनी में पकाएं या फलों को चीनी की परत के बीच रखें तथा पकाएं
↓
बाद में थोड़ा सा सिट्रिक अम्ल (0.1–0.5 प्रतिशत) डालकर पकाएं
↓
जार या मर्तबान में भरकर तथा बन्द करके शुष्क स्थान पर रखें

तालिका 1: फल तथा सब्जियों से जैम बनाने के लिए सामग्री*

फल / सब्जी	गूदा (किग्रा.)	चीनी (किग्रा.)	पानी (मिली.)	सिट्रिक अम्ल (ग्राम)	पेक्टिन (ग्राम)
आम	1.0	0.75	50	1.5	10.0
अमरूद	1.0	0.75	150	2.5	–
सेब	1.0	0.75–1.00	100	2.3	–
पपीता	1.0	0.70	100	3.0	4.0
आड़ू	1.0	0.75	100	1.0	3.0
आलू बुखारा	1.0	0.80	150	–	2.0
आंवला	1.0	0.75	150	–	–
अनन्नास	1.0	1.00	50	0.5	8.0
नाशपाती	1.0	0.75	100	1.5	–
स्ट्राबेरी	1.0	0.75	100	2.0	–
गाजर	1.0	0.75	200	2.5	10.0
टमाटर	1.0	1.00	100	3.0	2.0
मिश्रित फल	1.0	0.80–1.00	100	2.5	–

*जैली फलों के रस से तैयार की जाती है

तालिका 2: फल एवं सब्जियों का मुरब्बा बनाने से पहले उन्हें उपचारित करने के तरीके

फल / सब्जी	उपचार के तरीके		
	पहला उपचार	दूसरा उपचार	तीसरा उपचार
आंवला	पके हुए फल लें। स्टील के काटें से गोदें।	24 घण्टे के लिए 2 प्रतिशत नमक के घोल में रखें।	धोकर उबलते पानी में दो मिनट तक उपचारित करें।
आम	अधपके आम लेकर छीलें, हरा भाग निकालकर फांकों में काटें।	2 प्रतिशत नमक के घोल व 1 प्रतिशत पोटेशियम मेटाबाइ सल्फाइट मिले घोल में एक दिन रखें। धोकर कांटे से गोद लें।	0.25 प्रतिशत अम्ल वाले उबलते घोल में मुलायम होने तक उपचारित करें।
गाजर	गाजर को छीलकर टुकड़ों में काटें।	–	दो मिनट तक उबलते पानी में उपचारित करें और स्टील के कांटे से गोदें।

छोटे पैमाने पर फल–सब्जी परिरक्षण एक लाभदायक व्यवसाय है। इसे अपनाकर किसान भाई–बहन लाभ कमा सकते हैं। हमारी सरकार कुटिर उद्योग को बढ़ावा दे रही है और कुटिर उद्योग के स्तर को फल–सब्जी परिरक्षणशाला स्थापित करने के लिए सरकार से लाइसेन्स लेना आवश्यक है। इस उद्योग को स्थापित करने के लिए तकनीकी जानकारी, मार्गदर्शन तथा अन्य सहायता, सीफेट, लुधियाना, केन्द्रीय खाद्य एवं प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, मैसूर तथा कृषि विज्ञान केन्द्रों से भी प्राप्त की जा सकती है।

21

आम का मूल्य संवर्धन

हेमराज मीणा[1], अशोक कुमार परन्दियाल[2] एवं गोपाल लाल मीणा[3]

1. प्रस्तावना
2. आम का अचार बनाने की विधि
3. कच्चे आम की चटनी बनाने की विधि
4. आम का स्कवैश व नेक्टर बनाने की विधि
5. आम का पापड़ बनाने की विधि

1. प्रस्तावना

हमारे देश में फल एवं सब्जियों के उत्पादन में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। फल एवं सब्जियों के उत्पादन की दृष्टि से भारत, चीन के बाद दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। फल एवं सब्जियाँ शीघ्र नाशवान होने वाले कृषि उत्पाद है अतः किसान तुड़ाई के बाद शीघ्रातीशीघ्र इन्हें बाजार में बेचना चाहता है जिससे बाजार में फल व सब्जियों की आवक आवश्यकता से अधिक हो जाती है और बाजार में इनके दाम गिर जाते हैं परिणामस्वरूप किसान को उत्पादन के अनुरूप उत्पादों के दाम नहीं मिल पाते हैं।

इस समस्या के समाधान के लिए उत्पादक अपने उत्पादन (फल–सब्जियों) से विभिन्न प्रकार के मूल्य संवर्धित उत्पाद तैयार कर इनको लम्बे समय तक परिरक्षित कर सकते हैं। फल एवं सब्जियां मानव आहार के अभिन्न अवयवों में से एक है इनसे शारीरिक क्रियाओं के लिए आवश्यक विटामिन ए, सी, तथा खनिज लवण (कैल्शियम, मैग्निशियम लौह) आदि प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते हैं। सामान्यतया 25–30 प्रतिशत फल एवं सब्जियां तुड़ाई के पश्चात् रख–रखाव, परिवहन, भण्डारण एवं विपणन के दौरान सड़–गल कर नष्ट हो जाती है। उचित फसलोत्तर प्रबन्धन एंव मूल्य संवर्धन करके बिना पैदावार बढ़ाये ही फल सब्जियों की उपलब्धता बढ़ाई जा सकती है। यहाँ पर आम के मूल्य संवर्धन की कुछ विधियाँ बताई गई है जिससे की किसान भाई आम का मूल्य सवंर्धन करके अच्छी आय प्राप्त कर सकते हैं।

2. आम का अचार बनाने की विधि

आम को अच्छी तरह साफ करके 4–6 टुकड़े में काटे तथा नमक व हल्दी मिलाकर कुछ दिन रखें, जब आम से निकला पानी सूख जाये और टुकड़े मुलायम हो जाये तो सरसों का तेल गरम करके हींग व कलौंजी को भून कर उसमें मसाले मिलावें। तैयार मसाले में आम के टुकड़े मिलाकर साफ बर्तन में भरे। (तालिका–1)

3. कच्चे आम की चटनी बनाने की विधि

कसे हुए आम, प्याज, अदरक और लहसुन को एक साथ मिलाकर पानी के साथ पकायें। अच्छी तरह गल जाने पर चीनी मिलायें व चाशनी गाढ़ी हो जाने पर पीसे हुए मसाले मिलायें। जब चाशनी दो तार की हो जाये तो नमक मिलाकर चटनी को नीचे उतार कर चौड़े मुँह वाली साफ व सूखी बोतल में भरकर सील करें। (तालिका–2)

4. आम का स्कवैश व नेक्टर बनाने की विधि

आम के गूदे को स्टील की बारीक छलनी से छानकर एक समान करें, चीनी, पानी व साइट्रिक अम्ल को पानी के साथ हल्का गरम करके घोल बनायें व साफ मलमल के कपड़े से छानें। इस घोल को ठण्डा करके आम के गूदे के साथ मिलाकर एक बार फिर छलनी में छानें।

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, भाकृअनुप–भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केन्द्र, कोटा। ईमेलः meenahemraj@yahoo.co.in, मो. 9413350044
[2]प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप–भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केन्द्र, आगरा।
[3]वैज्ञानिक, भाकृअनुप–भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केन्द्र, कोटा

तालिका 1. आम का अचार बनाने के लिए सामग्री

सामग्री	मात्रा	सामग्री	मात्रा
कच्चे आम के टुकड़े	1 किलो	सौंफ	50 ग्राम
मेथी पाउडर	150 ग्राम	जीरा	10 ग्राम
कलौंजी (मगरैल)	10 ग्राम	बड़ी इलायची	5 ग्राम
हल्दी पिसी हुई	30 ग्राम	हींग	2 ग्राम
काली मिर्च पीसी हुई	10 ग्राम	सरसों का तेल	200 मि.ली.

तालिका 2. कच्चे आम की चटनी बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

सामग्री	मात्रा	सामग्री	मात्रा
कद्दूकस किया हुआ कच्चा आम	1 किलो	नमक (काला–सादा)	30 ग्राम
पिसा हुआ प्याज	50 ग्राम	गरम मसाला पिसा हुआ	20 ग्राम
बारीक कटा हुआ अदरक	50 ग्राम	पिसी लाल मिर्च	20 ग्राम
पिसा हुआ लहसुन	10 ग्राम	काली मिर्च	10 ग्राम
चीनी	1 किलो		

पोटेशियम मोटाबाई सल्फाईट को पानी में अलग से घोल कर घोल में मिलावें (तालिका–3)। तैयार स्कवैश में परिरक्षक मिलाकर साफ बोतल में भरें (चित्र 1)।

5. आम का पापड़ बनाने की विधि

आम की बहुतायत वाले मौसम में आम का पापड़ बनाकर इसको सुरक्षित रखा जा सकता है। इसके लिये

चित्र - 1

तालिका 3. आम का स्कवैश व नेक्टर बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

सामग्री	स्कवैश	नेक्टर
फल का गुदा	1 किलो	1 किलो
चीनी	1.6 किलो	800 ग्राम
साइट्रिक अम्ल	22 ग्राम	100 ग्राम
पानी	1.4 लीटर	3.2 लीटर
पोटेशियम मेटाबाई सल्फाईट	2.5 ग्राम	

एक किलो आम के गूदे में 100 ग्राम चीनी, मीठे गूदे में आधा चाय चम्मच व खट्ठे में एक चौथाई चाय चम्मच साइट्रिक अम्ल तथा एक ग्राम पोटेशियम मेटाबाई सल्फाईट मिलाकर हल्का गरम करें। इसमें से थोड़ा–थोड़ा गूदा घी लगी पॉलीथीन में सुखायें। अच्छी तरह सूखने पर परत दर परत आम का रस सुखाकर दो या तीन इन्च मोटाई तक आम का पापड़ बनाकर आवश्यकतानुसार टुकड़ों में काट कर पॉलीथीन में पैक करके रखें (चित्र 2)।

चित्र - 2

खंड–5

22

गृहवाटिका: खाद्य सुरक्षा का विकल्प

राकेश कुमार[1] एवं रीतु सिंह[2]

1. प्रस्तावना
2. गृहवाटिका बनाते समय ध्यान रखने योग्य बातें
3. गृहवाटिका में लगाने हेतु मौसम के अनुसार फल व सब्जियां
4. गृहवाटिका की बनावट

1. प्रस्तावना

खेती बाड़ी का इतिहास बहुत पुराना है। मानव उदय के समय बहुत से पौधे विकसित अवस्था में थे। यही मानव जब सामाजिक बना तो उसने बस्तियाँ बसाई तो उसके मन में यह विचार आया कि क्यों न खाना देने वाले पौधों को अपने घर के आसपास ही उगाया जाए और वही मनुष्य द्वारा उगाई गई सर्वप्रथम घरेलु वाटिका भी थी, जिसमें उसने अपनी आवश्यकता की फसल उगाई। सभ्यता और विकास के साथ उद्यानों के प्रति मानव रूचि का विकास हुआ। उद्यान के प्रति लगाव विशिष्ट जनों के अलावा जन सामान्य तक पहुँच गया। नगर बसने के साथ–साथ, यह प्रत्येक घरों के आस–पास की जमीन, बरामदें, छज्जे तथा आवश्यकता पड़ने पर छत पर भी फैलने लगा, जो गृहवाटिका के रूप में जानी जाती है।

हमारे देश में प्राप्त आकड़ों के अनुसार अभी भी प्रति व्यक्ति सब्जियों का उपयोग, सिफारिश की गई मात्रा से काफी कम 220 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रति दिन है। हमारे देश की जनसंख्या का काफी हिस्सा विशेषकर महिलाएं व बच्चे कुपोषण के शिकार हैं।

सब्जियां हमारे भोजन को स्वादिष्ट, पौष्टिक और संतुलित बनाने में सहायक है। इनके माध्यम से शरीर को कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज लवण, आवश्यक अमीनों एसिड व विटामिन मिलते हैं। भारतीय आर्युविज्ञान अनुसंधान परिषद् के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने भोजन में लगभग 100 ग्राम पत्तेदार सब्जियां, 100 ग्राम जड़वाली सब्जियां तथा 100 ग्राम अन्य प्रकार की सब्जियां खानी चाहिए।

बाजार में उपलब्ध सब्जियां व फल आमतौर पर ताजे नहीं होते तथा मंहगे भी होते हैं। साथ ही इनमें मौजूद रोगाणुओं व हानिकारक रसायनों की मात्रा के कारण अपने स्वास्थ्य में नुकसान होने का डर बना रहता है। हम अपने

[1]बागवानी विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केन्द्र, उजवा, नई दिल्ली। ई–मेल: kvkujwa@yahoo.com; Mobile: 93130-47633
[2]गृह विज्ञान विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केन्द्र, उजवा, नई दिल्ली।

खाने के लिए सब्जियों को अपने घर अथवा घर के आसपास गृहवाटिका (किचन गार्डन) के रूप में उगाये, जिसमें खाद्य सुरक्षा के साथ–साथ घर के सदस्यों का भी वाटिका में कार्य करने से व्यायाम हो जाता है।

गृहवाटिका से कुछ हद तक सभी लोग जुड़ सकते हैं चाहे वे गाँव में रहते हो या शहर में। बड़े शहरों में जहां पौधे उगाने के लिए जमीन की उपलब्धता नहीं है वहां भी कुछ चुनिंदा सब्जियों को गमलों व डिब्बों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। गाँव में जहाँ जगह की कमी नहीं है, वहाँ सब्जियों के अलावा फल वाले पौधे जैसे पपीता, केला, नींबू, अमरूद, स्ट्राबेरी, रसभरी आदि भी आसानी से उगाया जा सकता है।

2. गृहवाटिका बनाते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए:-

- गृहवाटिका के लिए खुली धूप एवं हवादार छाया रहित स्थान या घर के पीछे दक्षिण दिशा सर्वोत्तम होती है।
- सिंचाई का प्रबन्ध अच्छा एवं स्त्रोत पास में होना चाहिए।
- अच्छे जल निकास वाली दोमट भूमि इसके लिए उपयुक्त होती है। सड़ी हुई गोबर की खाद की सहायता से खराब भूमि में भी सुधार कर उपयोगी बनाया जा सकता है।
- गृहवाटिका का आकार एवं माप स्थान की उपलब्धता, फल व सब्जियों की आवश्यकता तथा समय की उपलब्धता आदि का निर्भर करता है। चौकोर आकार की गृहवाटिका सर्वोत्तम मानी जाती है।
- अगर वाटिका खुली जगह में बना रहे हैं तो उसके चारों ओर लकड़ी बास आदि की बाड़ बनानी चाहिए।
- जमीन को 10–15 से.मी. गहराई का खुदाई करें व कंकड़ पत्थर निकालकर मिट्टी को भुरभुरा बनाकर आवश्यकतानुसार क्यारियां बना लेना चाहिए।
- क्यारियों में सड़ी गोबर की खाद व जैविक खादों आदि का प्रयोग करना चाहिए।
- सीधे बुआई की जाने वाली व नर्सरी द्वारा लगाई जाने वाली सब्जियों को लगाने से पूर्व जैव फफूंदीनाशी व जैव कल्चर से उपचारित करने के पश्चात् उचित दूरी पर बनी कतारों में करना चाहिए।
- क्यारियों में समय–समय पर सिंचाई व निराई–गुड़ाई करते रहना चाहिए।

- गृहवाटिका में कीट नियन्त्रण एवं बीमारियों से बचाव के लिए रासायनिक दवाओं का कम से कम प्रयोग करना चाहिए तथा नीमयुक्त व जैविक दवाओं का ही प्रयोग करना चाहिए।
- उपलब्ध जगह का अधिक से अधिक प्रयोग करने के लिए बेल वाली सब्जियां जैसे लौकी, तोरी, करेला, खीरा आदि को दीवार के साथ उगाकर छत या बाड़ के ऊपर ले जा सकते हैं।
- जड़ वाली सब्जियां जैसे मूली, शलगम गाजर व चुकन्दर को गृहवाटिका की क्यारियों की मेड़ों के ऊपर बुआई करके पैदा किया जा सकता है।

3. गृहवाटिका में लगाने हेतु मौसम के अनुसार फल व सब्जियां

ग्रीष्मकालीन सब्जियां (जनवरी-फरवरी): टमाटर, मिर्च, भिण्डी, करेला, लौकी, खीरा, टिंडा, अरबी, तोरी, खरबूजा, तरबूजा, लोबिया, ग्वार, चौलाई, बैंगन, राजमा आदि।

वर्षाकालीन सब्जियां (जून-जुलाई): टमाटर, बैंगन, मिर्च, भिण्ड़ी, कद्दूवर्गीय सब्जी, लोबिया, खरीफ प्याज, अगेती फूलगोभी, पालक, मूली आदि।

शरदकालीन सब्जियां (सितम्बर-नवम्बर): फूलगोभी (मध्य/पछेती), गाजर, मूली आलू, मटर, पालक, मेथी, धनिया, सौंफ, शलजम, पत्तागोभी, गांठगोभी, ब्रोकोली, सालाद पत्ता, प्याज, लहसुन, बाकला, बथुआ, सरसों– साग आदि।

बहुवर्षीय पौधे या फलवृक्ष: अमरूद, नींबू, अनार, केला, करौंदा, पपीता, अंगूर सहजन, करीपत्ता, सतावर आदि।

4. गृहवाटिका की बनावट

बड़ी गृहवाटिका: जिन घरों के आसपास अधिक जगह उपलब्ध वहाँ बड़ी गृहवाटिका बनाई जा सकती है। इसमें प्रत्येक तरह की सब्जियों के साथ फल वाले पौधों को भी लगाया जा सकता है। इस गृहवाटिका का आकार 800–1000 वर्ग मीटर या इससे अधिक हो सकता है।

गृह वाटिका की आकृति

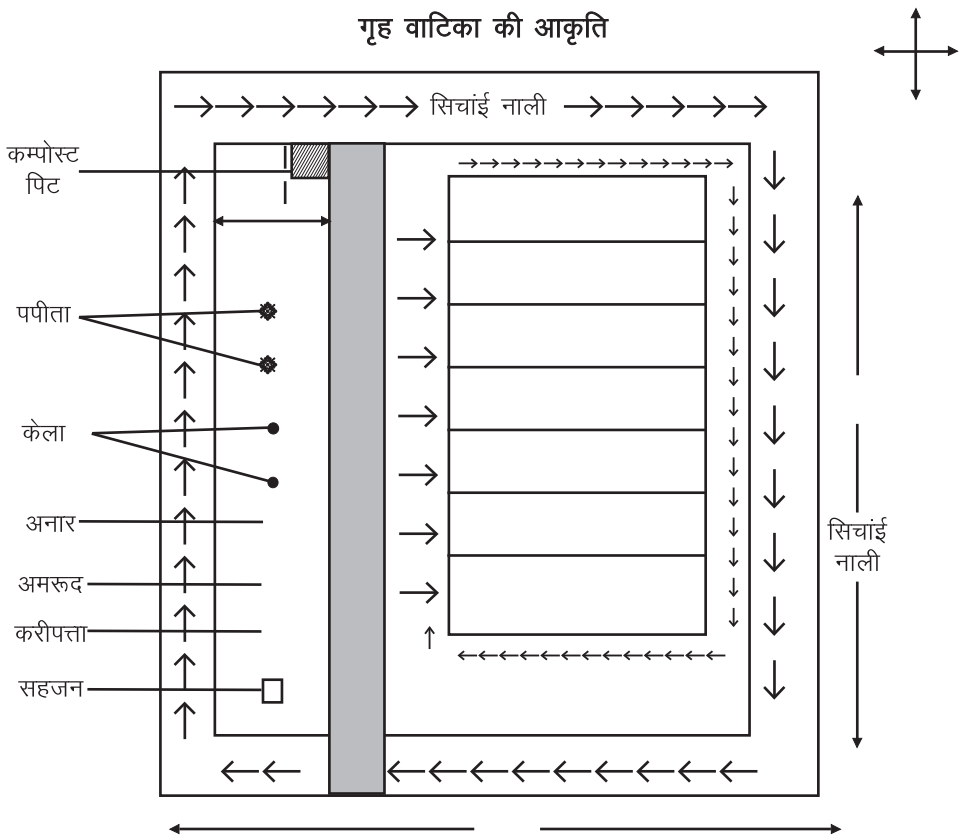

मध्यम गृहवाटिका: मध्यम आकार के गृहवाटिका जिसमें घर के आसपास 400–500 वर्ग मीटर जगह उपलब्ध है, वहां पर आलू, अरबी, प्याज, शकरकंद जैसी सब्जियां छोड़कर अन्य सभी प्रकार की सब्जियां और एक–एक पौधा केला, पपीता, नींबू आदि की भी आसानी से उगाया जा सकता है।

छोटी गृहवाटिका: छोटे घरों में जहाँ केवल 50–100 वर्ग मीटर जगह उपलब्ध हो वहां पत्तेदार व जड़वाली सब्जियां, बैंगन, सेम, टमाटर मिर्च व फूलगोभी वर्ग की सब्जियां उगाया जा सकता है। प्रकार की गृहवाटिका में फलदार पौधे उगाने की बहुत कम संभावना है।

अधिक छोटी गृहवाटिका: जहाँ केवल 5–10 वर्ग मीटर जगह हो वहाँ पर केवल पत्तेदार सब्जियां जड़ वाली सब्जियां आदि उगाई जा सकती है।

गमलों व डिब्बों की वाटिका: जिन घरों में पौधे उगाने की कोई जगह उपलब्ध नहीं है, वहाँ कुछ चुनिंदा सब्जियों को गमलों व डिब्बों में मिट्टी खाद व बालू रेत का मिश्रण भरकर उगाया जा सकता है। ऐसी सब्जियों में मिर्च, फ्रेंचबीन, मेथी, पालक, चौलाई, बथुआ, धनिया, टमाटर, लोबिया, लहसुन आदि मुख्य है।

गृहवाटिका के आवश्यक सामग्री: फावड़ा, खुर्पी, फव्वारा, दरांती, टोकरी, बाल्टी, सुतली, बास या लकड़ी का डंडा, एक छोटा सप्रेयर ।

गृहवाटिका में कम जमीन के अन्दर अधिक से अधिक उत्पादन देने वाली गुणवत्ता बीज या पौध को विश्वसनीय संस्था से खरीद कर प्रयोग करें।

पौधा: अधिकतर सब्जियों की पौध तैयार करके बाद में रोपाई करते हैं। नर्सरी के अन्दर स्वस्थ पौध तैयार करके रोपाई करना अथवा संस्था से पौध खरीदकर भी गृहवाटिका में लगातार सब्जियां उगाई जा सकती है।

जैविक व रसायनिक खाद: गोबर अथवा कम्पोस्ट खाद का प्रयोग ही गृहवाटिका के अन्दर करना चाहिए। इनके उपयोग से पौस्टिक व सुरक्षित सब्जियां उगायी जा सकती है। परन्तु कभी–कभी अभाव की दशा व अधिक उत्पादन हेतु यूरिया, किसान खाद, सुपर फास्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश का थोड़ी मात्रा की आवश्यकता होती है।

कीटनाशी व रोग रोधी दवाएँ: गृहवाटिका के अन्दर कीड़ों व बीमारियों का प्रकोप होता है तो ग्रसित पौधों को उस भाग को काटकर मिट्टी में दबा दें। प्रकोप होने पर जैविक कीटनाशी दवाओं का ही प्रयोग करें।

प्रबन्धन: गृहवाटिका में छोटी–छोटी क्यारियां बनाकर और उसमें सड़ी हुई गोबर खाद या कम्पोस्ट मिलाकर क्यारी समतल करके उसमें बीज की बुआई व पौध की रोपाई कर हल्दी सिंघाई कर दें तथा आवश्यकतानुसार सिंचाई व निराई–गुड़ाई करते रहना चाहिए। बीच–बीच में पौधों को सहारा देना चाहिए। कीट व बीमारी का प्रकोप होने पर जैव कीटनाशी का प्रयोग करें। सब्जियां तैयार होने बाद उनकी उचित अवस्था में तुड़ाई करके उपयोग करें। उचित प्रबन्धन व देखभाल के साथ गृहवाटिका के अन्दर ताजी पौष्टिक, स्वादिष्ट तथा सुरक्षित सब्जियां पैदा की जा सकती है। जो अपने परिवार के भोजन को अधिक पौष्टिक व संतुलित बना सकती है। इस प्रकार गृहवाटिका हमारी खाद्य सुरक्षा का विकल्प हो सकता है।

23

स्वरोजगार पायें: मधुमक्खी पालन अपनाएं

प्रद्युमन भटनागर[1], जय नारायण भाटिया[2], फतेह सिंह[3], प्रेम लता[4] एवं हरिओम[5]

1. प्रस्तावना
2. मधुमक्खी परिवार में सदस्यों के प्रकार
3. मधुमक्खी पालन की सामान्य जानकारी
4. मधुमक्खियों में प्रमुख बीमारियाँ

1. प्रस्तावना

प्रकृति में पाए जाने वाले लाभदायक कीटों में मधुमक्खियों का एक विशेष स्थान है। मधुमक्खियां फसलों में पर–परागण क्रिया द्वारा फसलों की पैदावार में वृद्धि करती है व उत्पाद की गुणवत्ता भी बढ़ा देती है। मधुमक्खी पालन एक ऐसा कृषि आधारित व्यवसाय है जिसे छोटे व भूमिहीन किसान भी अपना सकते हैं। लचीला व्यवसाय होने के साथ ही लगातार आमदनी का साधन भी है जिसके कारण छोटे मधुमक्खी पालक इसे अंशकालिक व बड़े मधुमक्खी पालक इसे पूर्णकालिक व्यवसाय के रूप में अपना सकते हैं। कम लागत से शुरू होने वाला यह व्यवसाय वर्ष में कई बार आर्थिक लाभ दे सकता है। मधुमक्खी पालन से शहद के अतिरिक्त मोम, परागकण, रॉयल जैली, मौन विष आदि पदार्थ भी मिलते हैं जिनकी राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारी मांग है। एक अनुमान के अनुसार भारतवर्ष में पर–परागण के लिए 120 मि. मौनवंशों की आवश्यकता है जिससे हमें 1.2 मि. टन से ज्यादा शहद व लगभग 15000 टन मोम प्राप्त हो सकता है तथा 12 लाख लोगों को रोजगार भी उपलब्ध हो सकता है। हरियाणा व अन्य प्रदेशों में पाश्चात्य मौन (एपिस मेलीफेरा) का सफल पालन किया जा रहा है जिससे 50–60 कि.ग्राम शहद प्रति वंश प्रति वर्ष मिल सकता है।

2. मधुमक्खी परिवार में सदस्यों के प्रकार

रानी मधुमक्खी: एक छत्ते/बक्से में एक रानी मधुमक्खी, जोकि पूर्ण मादा होती है, 1500–2000 अण्डे प्रतिदिन दे सकती है। सामान्यतः एक से डेढ़ वर्ष बाद रानी को बदल दिया जाता है क्योंकि नई रानी की अण्डे देने की क्षमता अधिक होती है। रानी मधमुक्खी दो प्रकार के अण्डे देती है, एक गर्भित अण्डे, जिनसे कमेरी व रानी मधुमक्खी बनती है तथा दूसरे अगर्भित अण्डे जिनसे नर मधुमक्खी बनती है। पराग व मधुरस कम उपलब्ध होने पर रानी अण्डे देने कम कर देती है।

कमेरी मधुमक्खी: यह अपूर्ण मादा होती है जोकि श्रमिक का काम करती है। इसका जीवनकाल 42 दिन का होता है तथा यह अण्डे नहीं दे सकती। कभी–कभी रानी की अनुपस्थिति में या रानी बूढ़ी होने पर कमेरी मधुमक्खी निर्जीव/अनिषेचित अण्डे देती है, जिससे केवल नर ही उत्पन्न होते हैं। कमेरी मधुमक्खियों के कार्य का विभाजन आयु के आधार पर होता है। 1–3 दिन की कमेरी मधुमक्खी कोष्ठों की सफाई करती है, 4–6 दिन की कमेरी मधुमक्खी प्रौढ सूंडियों को भोजन खिलाती है। इसी प्रकार 6–13 दिन की अवधि में ये नवजात तीन दिन तक की सूंडियों को भोजन कराती है। 14–18 दिन की आयु में इनकी मोम ग्रन्थियां विकसित हो जाती हैं। अतः कोष्ठों को बनाने व ठीक करने का कार्य संभालती हैं। बड़ी होने पर 18–21 दिन की आयु में कालोनियों की सुरक्षा करती हैं व प्रशिक्षण उड़ान पर भी जाती हैं। 21 दिन की आयु के पश्चात मक्खियां फूलों से पराग व मकरन्द लाती हैं, भोजन के नये

[1–5]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र कुरूक्षेत्र हरियाणा।
ई–मेलः praduman2006@gmail.com; Mobile: 98121-68519

स्त्रोत खोजती हैं, पानी लाती हैं व पखों से हवा कर छत्ते के तापमान को अनुकूल बनाती हैं। सामान्यतः एक मधुमक्खी 40 मि.ग्रा. मकरन्द लेकर आती है जिसके लिये 50–500 फूलों पर भ्रमण करती है। एक दिन में लगभग 10–20 मकरन्द लोड लाकर छत्ते में एकत्रित करती है। इसी प्रकार पराग लोड (10–30 मि.ग्रा.) भी इकट्ठा करती है।

नर मधुमक्खी: एक कालोनी/वंश में नर की संख्या 500 तक हो सकती है। किन्तु ये परिवार का कोई भी कार्य नहीं कर सकते तथा 2 माह तक जीवित रहते हैं। इनका कार्य केवल नई रानी से मिलन का होता है।

3. मधुमक्खी पालन की सामान्य जानकारी

मधुमक्खी पालन शुरू करने का सही समय अक्टूबर–नवम्बर माह है क्योंकि इस समय मौनचर/फूल अधिक संख्या में मिलते हैं। फरवरी–मार्च तक फूलों की बहुतायत बनी रहती है जिसके कारण भरपूर मात्रा में शहद मिलता है। अच्छा मौनचर मिलने की अवस्था में 50 वंश तक एक स्थान पर रखे जा सकते हैं। किन्तु दो इकाईयों की आपस में दूरी लगभग 2 कि.मी. की रखनी चाहिए। दो वंशों में 5 फुट की दूरी रहनी चाहिए। मौनालय की स्थापना ऐसे स्थान पर करें जहां से मौनवंशों को जल्दी हटाने की आवयकता न पड़े क्योंकि ये एक विशेष प्रकार की गन्ध छोडकर व मार्ग में आने वाली वस्तुओं को याद कर अपना मार्ग बना लेती है। मौन वंशों का बदलते मौसम के अनुसार प्रबन्ध करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। गर्मी के मौसम में फूल कम होने पर चीनी की चाश्नी (एक लीटर पानी में 500 ग्राम चीनी) वंशों को दें। मौन वंशों को आटे की पेढ़ी भी दे जिससे रानी अधिक अण्डे देने शुरू कर देगी व कमेरी मधुमक्खियों की भोजन की आवश्यकता भी पूरी हो जाएगी। सोयाबीन का आटा (250 ग्राम), पाऊडर दूध (150 ग्राम) व शहद को मिला कर 100 ग्राम की पेढ़ियां बना लें व कागज पर रखकर फ्रेमों पर उल्टा रख दें। ध्यान देने योग्य बात है कि शहद केवल उन्हीं चौखटों से निकालें जिनके तीन चौथाई कोष्ठ बन्द हो। इससे शहद लम्बे समय तक खराब नहीं होगा।

4. मधुमक्खियों में प्रमुख बीमारियाँ

मधुमक्खियों के प्रौढ़ व सूंडियों पर कीट व बीमारियों का भी प्रकोप हो जाता है जिनका प्रबन्धन करना अत्यंत आवश्यक है।

अष्टपदी/वरोआ माईट: मौनवंशों में माईट या चीचड़ी की समस्या गम्भीर है। ये शत्रु सूंडियों व प्रौढ़ के शरीर पर चिपक कर उनका खून चूसती हैं। जिसके कारण शिशुओं का विकास पूरा नहीं होता व पूर्ण प्रौढ़ नहीं बन पाते। यदि प्रौढ़ बन भी जाए तो उनकी टागें व पंख पूरी तरह विकसित नहीं हो पाते, ऐसी मधुमक्खियां बक्से के आस–पास रेंगती दिखाई देती हैं। इनके प्रबन्धन के लिए बक्से के तलपट्टे पर चिपचिपा पदार्थ लगा कागज रख दें तथा प्रति सप्ताह इसको निकालकर जला दें। इसके अतिरिक्त 5 मि.ली. फारमिक एसिड (85 प्रतिशत) का 15 दिन तक धुमण करें। कांच की शीशी में एसिड डालकर उसमें रूई की बत्ती डाल दें व तलपटे पर रख दें। प्रत्येक प्रातः इस शीशी को निकाल लें व सायं के समय इसे पुनः भरकर तलपटे पर रख दें।

सैक ब्रूडः यह एक विषाणु रोग है जिसका प्रकोप शिशुओं में कोष्ठ बन्द होने से पहले हो जाता है। इसमें सूण्डी की बाहर की चमड़ी मोटी व भीतर के अंग पानी की तरह हो जाते हैं। शक्तिशाली वंशों में इस बीमारी का प्रकोप कम पाया जाता है। अतः बक्से में मधुमक्खियों की संख्या पूरी रखें व कालोनी की साफ–सफाई रखें।

यूरोपीयन फाउल ब्रूडः यह एक बैक्टीरिया जनित रोग है जिसमें मधुमक्खी के लारवे/सूंडियां अण्डे में से निकलने के पश्चात् 1–3 दिन मे बीमारी से ग्रसित हो जाते हैं। धीरे–धीरे इनका रंग हल्का भूरा, भूरा व काला पड जाता है तथा सूखकर कोष्ठ की तली में पड़े दिखाई देते हैं। इनके प्रबन्धन के लिए टैरामाइसीन 250 मि.ग्राम को 750 मि.ली. पानी व एक चम्मच शहद में मिला लें व प्रभावित ब्रूड पर फव्वारे से छिड़कें। दूसरा छिड़काव 7–10 दिन बाद करें। यह छिड़काव शहद निकालने के बाद करें ताकि शहद में अवशेष न रहने पाए।

24

पशुपालकों के लिए उपयोगी सलाह

जी.एस. मीना[1], बी.एस. मीना[2], आर.के. मीना[3] एवं के.सी. मीना[4]

प्र.- पशुओं को बहुत खल खिलाते हैं लेकिन दूध नहीं बढता क्या उपाय करें ?

उ.– पशुओं को सिर्फ खल नहीं खिलाकर संतुलित पशु आहार खिलावें। इसके लिए अपने घर पर खल, दलिया, चापड, चूरी, खनिज मिश्रण एवं नमक को मिलाकर संतुलित पशु आहार बनावें और इसे भिगोकर सभी पशुओं को उनकी आवश्यकता के अनुसार खिलावें। इसके अलावा पशु को हरा एवं सूखा चारा मिलाकर भर पेट खिलाना चाहिए।

प्र.- दुधारू पशुओं में एकाएक दुग्ध उत्पादन क्यों गिर जाता है इससे बचाव के क्या उपाय हैं ?

उ.– इस बीमारी को एग्लैक्टिया कहते हैं। इसमें पशु के शरीर में कैल्सियम की कमी हो जाती है अतः दुधारू पशु को 40–50 ग्राम खनिज मिश्रण प्रतिदिन खिलाना चाहिए।

प्र.- कुछ गाय व भैंस मिट्टी, गन्दगी, हड्डी, कपडे, जूते-चप्पल, प्लास्टिक आदि खाती हैं, इसका क्या उपचार है ?

उ.– इस बीमारी को पाईका कहते हैं जो फास्फोरस की कमी से होता है। इसके उपचार हेतु पशु को प्रतिदिन खनिज मिश्रण जैसे एग्रीमीन, कैल्डीमीन, मिल्कमिन, मिनरलफोर्ट, मिनिमिक्स 40–50 ग्राम तथा कृमिनाशक दवा देना चाहिए।

प्र.- पशुओं में सुर्रा बीमारी के कारण एवं उपचार बतायें ?

उ.– पशुओं में सुर्रा का कारण खून में पाये जाने वाले ट्रिपेनोसोमा नामक प्रोटोजोआ है। यह प्रोटोजोआ खून चूसने वाली मक्खी द्वारा बीमार पशुओं से स्वस्थ्य पशुओं में फैल जाता है। बीमार पशु बार–बार पेशाब करते हैं। आँखें लाल हो जाती हैं। शरीर का तापक्रम 1060–1080 फा. हो जाता है। आँखें बहने लगती हैं तथा कभी–कभी आँखों की काली पुतली पर सफेद झिल्ली आ जाती है। पशु खाना कम कर देता है। शरीर में थकावट आ जाती है, दूध सूख जाता है तथा ग्याभिन पशु का बच्चा गिर जाता है। कभी–कभी पशु चक्कर मारते हुए नजर आता है। इसकी मुख्य दवायें जैसे वैरेनिल, ट्राईक्वीन, एन्ट्रीसाइड– प्रोसाल्ट अथवा आधुनिक नई दवायें निकटतम पशु–चिकित्सक की परामर्श से प्रयोग करना चाहिए।

प्र.- छोटे पड़ा-पाड़ी बुखार, अफरा अथवा दस्त होने से मर जाते हैं, क्यों ?

उ.– इन बच्चों में एस्केरिस (पटेरे) का प्रकोप होता है। इससे बच्चों में बदबूदार दस्त, दांत का किटकिटाना, पेट का फूल जाना, पैर जकड़ जाना आदि मुख्य लक्षण होते हैं। इस बीमारी के उपचार के लिए कृमिनाशक दवा जैसे– एल्वोमार, बेनमिंथ आदि देना चाहिए।

प्र.- गाय के ब्याने के बाद उसके चारो थनों से खून क्यों आ जाता है तथा इसका क्या उपचार है ?

उ.– चारों थनों से खून आने के कई कारण हो सकते हैं परन्तु मुख्य रूप से कैल्सियम की कमी से थनों से खून आता हैं। खून अलग से दिखाई नहीं देता परन्तु चारों थनों का खून हल्का गुलाबी या लाल नजर आता है। ऐसी स्थिति में कैल्सियम इंजेक्शन जैसे माईफेक्स, थाईकाल, कैल्सियम–बोरोग्लूकोनेट नस में लगाते हैं या कैलडी–12, कैल्सियम सैन्डोज–10 मि.ली. या कैल्सिटॉक्स–30 मि.ली. मांस में लगाने से लाभ हो जाता है।

[1,4]कृषि विज्ञान केन्द्र, बून्दी। ई–मेलः ghanshyam774@gmail.com; Mobile: 94140-22664
[2,3]कृषि विज्ञान केन्द्र, करोली।

प्र.- क्या दुधारू पशुओं को सम्पूर्ण मात्रा में केवल हरा चारा जैसे बरसीम-जई आदि खिला सकते हैं ?

उ.– दुधारू ही नहीं, किसी भी तरह के पशु को पूर्ण मात्रा अर्थात् भर पेट केवल हरा चारा नहीं खिलाना चाहिए। हरे चारे में नमी (पानी) की मात्रा अधिक होती है इससे आपके पशु को अफरा (गैस की समस्या) हो सकता है। भरपेट हरे चारे के साथ 2–4 कि.ग्रा. सूखा चारा (भूसा, कडवी इत्यादि) शरीर भार के अनुसार अवश्य देना चाहिए।

प्र.- यूरिया उपचारित भूसा खिलाने का सुझाव दिया जाता है। क्या इससे पशु मरेगा नहीं ?

उ.– यूरिया उपचारित भूसा खिलाने से आपका पशु बिलकुल नहीं मरेगा, बल्कि इससे उसका उत्पादन एवं स्वास्थ्य अच्छा होगा। यूरिया की मात्रा 2 कि.ग्रा./100 कि. ग्रा. भूसा से अधिक नहीं होनी चाहिए। पशु के पेट में सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं जो यूरिया को उच्च किस्म के प्रोटीन में परिवर्तित कर देते हैं, जो अन्ततः आपके पशु को मिल जाता है।

प्र.- अच्छे परिणाम के लिए मद के दौरान पशु को कब गर्भित करना चाहिए ?

उ.– अधिकतर गायें सुबह 4 बजे से दोपहर 12 बजे तक तथा भैंस शाम 6 बजे से सुबह 6 बजे तक गर्मी में आती हैं। भैंस सर्दी में अधिक प्रजनन करती है। अतः मद के लक्षण पहचान कर पशुओं को मद में आने के 10–12 घण्टे पश्चात् गर्भित करायें। अगर किसी कारणवश मदकाल निकल जाता है तो 21वें दिन विशेष नजर रखें और सही समय पर गर्भित करायें।

प्र.- बछिया को गले के नीचे फूल गया है और चारा कम खा रही है, क्या करें ?

उ.– इस बीमारी को वॉटल जॉ कहते हैं जो प्रायः वर्षा ऋतु में होता है। यह बीमारी लीवर फ्लूक की वजह से होता हैं। इससे बचाव के लिए पशुपालक अपने पशु को अंतः कृमिनाशी दवा जरूर दें। विशेषतया, ऑक्सीक्लोजानाईड समूह की। आवश्यकता पड़ने पर पशु–चिकित्सक से सलाह लें।

प्र.- गाय एवं भैंस बच्चा देने के 24 घंटा बाद खीस निकालने के पश्चात् काँपनें लगी एवं बैठ गयी है, क्या करें ?

उ.– आपके पशु को दुग्ध ज्वर का लक्षण है। दुग्ध ज्वर प्रायः अधिक दूध देने वाले जानवरों को कैल्सियम एवं फास्फोरस की कमी से होता है तथा पशु के खून में इनकी कमी तुरन्त परिलक्षित होने लगती है। यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो तो तुरन्त कैल्सियम एवं फास्फोरस का इंजेक्शन लगाना चाहिए तथा कैल्सियम पिलाया जाना चाहिए।

प्र.- खुरपका-मुँहपका रोग होने का कारण तथा उपचार क्या है ?

उ.– इस रोग का कारण एक प्रकार का विषाणु (वायरस) है। इसमें मुँह तथा खुर के बीच में घाव बन जाते हैं। घावों को फिटकरी या नीला थोथा के घोल से धोना चाहिए। मुँह के घाव पर बोरो–ग्लिसरीन तथा खुर के घाव पर हाईमैक्स या लोरेक्शन क्रीम लगाना चाहिए। पशुओं को इससे बचाव हेतु मार्च एवं नवम्बर माह में टीका अवश्य लगवाना चाहिए।

प्र.- स्वस्थ पशुओं को खुरपका-मुँहपका से बचाव के क्या उपाय हैं ?

उ.– स्वस्थ पशुओं को बीमार पशुओं से अलग रखना चाहिए तथा बचाव हेतु टीकाकरण वर्षा ऋतु शुरू होने से पूर्व करा लेना चाहिए।

प्र.- गलाघोंटू (घुर्रका) होने का कारण तथा उपचार क्या है। स्वस्थ पशुओं को हम किस प्रकार बचायेगें ?

उ.– इस बीमारी को हेमोरेजिक सेप्टीसीमिया (एच.एस.) भी कहते हैं। जिसका कारण एक बैक्टीरिया (जीवाणु) है। इसमें पशुओं के गले में दर्द एवं सूजन होती है। साँस लेने में परेशानी होती है तथा पशु मुँह खोलकर साँस लेता है। लार गिरता है, घुर्र–घुर्र की आवाज करता है, तेज बुखार हो जाता है। एक से तीन दिन में पशु मर जाता है। उपचार के लिए हाई डोजेज आफ टैरामाइसिन या सल्फा ड्रग नस में 3–5 दिन देना चाहिए तथा सूजन कम करने के लिए वैटालाग या प्रेडनीसोलोन का इन्जेक्शन भी लगाना चाहिए। स्वस्थ पशुओं को अलग रखना चाहिए। जून माह में टीका अवश्य लगवाना चाहिए। टीकाकरण ही सबसे सस्ता एवं कारगर उपाय है।

प्र.- पशुओं में बाँझपन की समस्या बढ़ती जा रही है इसका कारण व बचाव क्या हैं ?

उ.– पशुओं में बाँझपन के कई कारण हो सकते हैं जैसे संतुलित आहार की कमी, खनिज तत्वों की कमी, गर्मी के लक्षण न पहचानना, समय से गर्भित न कराना, बच्चेदानी में संक्रमण, बच्चेदानी छोटा या टेढ़ा होना, वीर्य में खराबी आदि। उपचार हेतु पशु को किसी कुशल पशु–चिकित्सक को दिखायें।

प्र.- गाय-भैंस को बुखार व पेट दर्द से सुरक्षित रखने के क्या उपाय हैं ?

उ.– पशुओं को बुखार होने के कई कारण हो सकते है जैसे निमोनिया, लू लगना, अपच आदि। इसका उपचार वास्तविक कारण जानने पर ही बताया जा सकता है। प्राथमिक चिकित्सा में नोवालजीन, डिक्लोफेनेक या पैरासीटामॉल का इन्जेक्शन देकर बुखार उतार देना चाहिए। तत्पश्चात् पशु–चिकित्सक की सलाह लें।

प्र.- दुधारू पशुओं के छोटे बच्चे के आँख से आँसू व कीचड़ आता है, कृपया उपचार बतायें ?

उ.– लक्षणों से प्रतीत होता है कि बच्चे के पेट में कीड़े हैं। इससे निजात पाने के लिए कीड़े मारने वाली दवा जैसे पीपराजीन, एलवेन्डाजॉल, फेनवेन्डाजॉल, क्लोसेन्टल, कुरसेलॉन नामक दवा पशु–चिकित्सक के निर्देशानुसार दें।

प्र.- गाय या भैंस पतला गोबर करती है और इस कारण दुबली पतली हो जाती है। बचाव के क्या उपाय हैं ?

उ.– पतला गोबर पशुओं में प्रायः केंचुआँ के प्रकोप के कारण होता है। अगर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होती है तो केंचुआनाशी दवा देनी चाहिए। परन्तु कभी–कभी पतले गोबर को रोकने के लिए सेन्टोजिल वोलस एक–एक (सुबह–शाम) तीन दिन या सल्फामीडीन वोलस 2–2 सुबह–शाम चावल के माड़ में देना चाहिए। संभव हो तो 100 मि.ली. सल्फाडाईमिडीन नस में देना चाहिए।

प्र.- कभी-कभी भैंस के थन की फली (थन का अग्र भाग) जड़ से कट जाते हैं। इसका क्या उपचार हैं ?

उ.– भैंस के थन पर पहले एक दाना बनता है फिर फली के जड़ पर घाव (निक्रोसिस) हो जाता है। इस बीमारी को वायरस जनित मैमिलाइटिस कहते हैं। उपचार के लिए पहले लाल दवा के पानी से थन को धोना चाहिए फिर घाव पर पोवीडीन आयोडीन या जिंक आक्साइड मलहम सुबह–शाम लगाना चाहिए। पशु–चिकित्सक की सलाह ले सकते हैं।

प्र.- भैंस में बार-बार अफरा होने पर क्या करना चाहिए ?

उ.– भैंसों में अफरा बनने के कई कारण हो सकते हैं, जिसमें मुख्य रूप से गैस बनाने वाले चारों का अधिक मात्रा में खाना, आंतों में किसी प्रकार की रूकावट, अवांछनीय तत्व जैसे प्लास्टिक आदि खा लेना है। उपचार के लिए जानवर के मुँह में नीम की टहनी बाँध दें जिससे पेट की गैस निकल जाये। अगर गैस ज्यादा बन गई है तो बायें कोख से सुई द्वारा गैस निकाला जा सकता है। तुरन्त ही गैस निरोधक दवा जैसे ब्लोटोसिल 100 मि.ली., ब्लोटीनोक्स 100 मि.ली. या टिम्पोल 50 ग्राम घोल के रूप में पिलाना चाहिए।

प्र.- पशुओं को पागल कुत्ता काटने की अवस्था में क्या करना चाहिए ?

उ.– यदि किसी पशु को पागल कुत्त काटता है, तो इस स्थिति में काटे हुए स्थान को अच्छी प्रकार धो दें तथा निश्चित अंतराल पर एन्टीरैबीज का इंजेक्शन लगवाना चाहिए। पहला इन्जेक्शन कुत्ता काटने के 24 घंटे के अंदर तथा शेष तीसरे, 7वें, 14वें, 28वें एवं 90 दिन पर लगवायें।

प्र.- भैंस की पूँछ नीचे से कट-कट कर गिर रही है। बचाव के उपाय बतायें ?

उ.– यह बीमारी प्रायः गाय एवं भैसों में देखने को मिलती है। यह बीमारी सेलिनियम की कमी से तथा दूसरा अरगॉट नामक फफूँद से भी होता है। इलाज के साथ इसका बचाव भी जरूरी है। बचाव में पशु को सदैव गीला भूसा एवं पुआल नहीं खिलाना चाहिए तथा उपचार में सेलिनियम एवं विटामिन 'ई' का इन्जेक्शन लगाना चाहिए।

प्र.- बकरियों में पोकनी नामक बीमारी से बहुत मौत हो जाती है, बचाव के उपाय बतायें ?

उ.– यह बीमारी विषाणु से होती है इसको बकरी का प्लेग भी कहा जाता है। इस बीमारी का उपचार केवल बचाव है इसलिए मई–जून माह में भेड़ एवं बकरियों को इसकी टीका लगवाना चाहिए तथा यदि किसी भेड़ एवं बकरियों को यह बीमारी हो जाती है तो उसे समूह से अलग कर उसका इलाज कराना चाहिए अन्यथा दूसरे पशुओं को भी यह बीमारी हो सकती है।

प्र.- दलहनी और गैर-दलहनी चारों में अन्तर बतायें ?

उ.– दलहनी चारा जैसे बरसीम, लोबिया, ग्वार इत्यादि में गैर–दलहनी जैसे जई, ज्वार, मक्का आदि चारों की अपेक्षा प्रोटीन अधिक मात्रा में पायी जाती है। अतः यह ज्यादा पौष्टिक होता है। इसके अलावा दलहनी चारों की खेती से भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है।

प्र.- बकरी के नर बच्चों का बंध्याकरण कब करें और इससे क्या लाभ है ?

उ.– नर बच्चों का बंध्याकरण एक माह की आयु तक कर देना चाहिए। बंध्याकरण के पश्चात् जो खाल प्राप्त होती है वह गंधहीन होती है और मांस भी गुणात्मक होता है।

प्र.- पशुओं में ब्यात के पश्चात् यदि जेर रूक जाती है तो क्या करना चाहिए ?

उ.– साधारणतया जेर पशुओं के ब्याने के 6–12 घंटे तक स्वतः गिर जाती है। परन्तु यदि 12 घंटे पश्चात् भी जेर नहीं गिरती है तो यूट्रोटोन दवा 900 मि.ली. लेकर 300 मि.ली. तीन छोटे–छोटे अन्तराल पर दें, और भी दवा बाजार में उपलब्ध हैं जो परामर्श के उपरान्त दे सकते हैं। फिर भी यदि 24 घंटे तक जेर बाहर नहीं निकलता है तो पशु–चिकित्सक से सलाह अवश्य लें।

प्र.- कुछ पशु सरसों की खली चाव से नहीं खाते है क्या करें ?

उ.– सरसों की खली में ग्लूकोसाइनोलेट्स होते हैं जिससे स्वाद में कमी आ जाती है। खली को पानी में 8 घंटे भिगोने से इसका जलीय विघटन एवं स्वाद में सुधार हो जाता है।

किसान कॉल सेन्टर
1800 180 1551

सत्यमेव जयते
FARMERS' PORTAL
"ONE STOP SHOP FOR FARMERS"

हिन्दी चेतना मास का आयोजन

हिन्दी चेतना मास (सितम्बर–2017) में आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के परिणाम

क्र.सं.	प्रतियोगिता का नाम	परिणाम	विजेता का नाम
1.	**शब्द ज्ञान**	प्रथम	श्री नरपत सिंह गहलोत
		द्वितीय	श्री हंसराज सैन
		तृतीय	श्री भवानी सिंह ईन्दा
2.	**निबन्ध लेखन**	प्रथम	श्री कैलाश जाखड़
		द्वितीय	श्री भवानी सिंह ईन्दा
		तृतीय	श्री तरूण गौड़
3.	**कविता पाठन**	प्रथम	श्री अभिषेक पालड़िया
		द्वितीय	श्री हंसराज सैन
		तृतीय	श्री राजेन्द्र बैन्दा
4.	**वाद-विवाद**	प्रथम	श्री प्रमोद शर्मा
		द्वितीय	श्री नरपत सिंह गहलोत
		तृतीय	श्री पी.के. सतपथी

कृषि ज्ञान गंगा

अर्द्धवार्षिक पत्रिका

अंक प्रथम, जुलाई–दिसम्बर, 2016

खण्ड 1: कृषि तकनीक एवं उसका सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

1. **सहभागीदारी बीज उत्पादन द्वारा किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार** - एस.के. सिंह, रियाजउद्दीन एवं मोहम्मद इकबाल
2. **कृषक से कृषक प्रसार तंत्रः शक्तियां, कमजोरियां एवं स्थिरता का मुद्दा** - एम.एस. मीना, आर.बी. काले, एस.के. सिंह एवं कैलाश
3. **मौसम की विषम परिस्थितियों का कृषि पर प्रभाव** - एच.एम.मीना, आर.के. सिंह, के.एस. जादौन, विकास चौधरी एवं लक्ष्मीनाराण राव

खण्ड 2: फसल उत्पादन तकनीक

4. **मूँगफली के प्रमुख रोग एवं उनकी रोकथाम** - कुलदीप सिंह जादौन, पि.पि. थिरूमलाईसामी, राम दत्ता, ऋतु मावर एवं एच.एम. मीना
5. **बैंगन के प्रमुख कीट तथा उनका नियंत्रण** - केशव मेहरा, वीर सिंह, अमित यादव एवं पुष्पा सिंह
6. **शुष्क क्षेत्र में फलों की उन्नत कृषि तकनीक** - हरिदयाल, पी.एस. भाटी एवं सुशील कुमार शर्मा
7. **एजोला - पशुओं के लिए वरदान** - शिवमूरत मीना एवं धनराज शर्मा
8. **कीट प्रबन्धन की पर्यावरण अनुकूल तकनीकें** - हरीश वर्मा एवं के.एम. शर्मा
9. **दलहनी फसलों के कीट एवं रोगों का जैविक प्रबंधन** - पुष्पा सिंह, ब्रजेश शाही, एवं के.एम. सिंह
10. **सूक्ष्म पोषक तत्वों के उपयोग से बढ़ाएं फसलों की उत्पादकता** - रणजीत सिंह, आर.एल. सोनी, रामअवतार एवं श्रीमती उर्मिला
11. **मृदा उर्वरता प्रबन्धन** - के.एम. शर्मा
12. **जैविक खेती में समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन** - दयानन्द, रणजीत सिंह राठौड़, आर.के. वर्मा एवं एस.एम. मेहता
13. **सरसों की फसल का समेकित कीट प्रबंधन** - अमित यादव, पुष्पा सिंह, वीर सिंह एवं अभिषेक यादव
14. **टिकाऊ खेती के लिये गुणवत्तायुक्त जीवांश खादें बनायें** - के.एम. शर्मा एवं हरीश वर्मा

खण्ड 3: पशुपालन तकनीक

15. **बकरी पालन एक लाभकारी व्यवसाय** - हँसराम मीना
16. **मुर्गी पालन एवं अण्डा उत्पादनः ग्रामीण व्यवसाय** - पंकज कुमार एवं सरोज कुमार रजक
17. **मुर्गी पालन में उचित आहार एवं बीमारी प्रबन्धन से बढ़ाएं आय** - मुकेश कुमार
18. **मछली पालन की उन्नत तकनीक** - अनुप कुमार
19. **कृत्रिम गर्भाधान एवं वीर्य लिंग निर्धारण- पशुपालन उपयोगी सहायक प्रजनन तकनीक** - रजनी कुमारी एवं संजय कुमार
20. **कृषि विविधिकरण में पशुपालन का योगदान** - आर.एस. राठौड़, आर.के. वर्मा, दयानन्द एवं एस.एम. मेहता

खण्ड 4: कृषि प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन

21. **कृषि प्रसंस्करण उद्योगों में ध्वनि प्रदूषण का वैज्ञानिक आंकलन** - इन्दु रावत
22. **दूध एवं दूध उत्पादों का मूल्य संवर्द्धन** - सविता सिंघल, पूनम कालश एवं एस.के. शर्मा

.....पिछले पृष्ठ का शेष

23. **फल-सब्जी परिरक्षण** - रूपेन्द्रकौर, भगवत सिंह राठौड़ एवं अशोक कुमार शर्मा

24. **फलों एवं सब्जियों की आपूर्ति श्रृंखला को प्रभावित करने वाले कारक** - हेमन्त कुमार वर्मा, चिरंजी लाल मीना, अभिषेक पालड़िया एवं भवानीसिंह ईन्दा

25. **कटाई उपरांत नुकसान एवं निवारण तकनीक** - दशरथ भाटी एवं सुमित्रा मीना

खण्ड 5: कृषि आय अर्जित करने की वैकल्पिक गतिविधियां

26. **स्वयं सहायता समूहः ग्रामीण महिलाओं की आशा की किरण** - प्रीति ममगई, देवेन्द्र तिवारी एवं अवनीत कौर

27. **स्वयं सहायता समूहः महिला सशक्तिकरण हेतु बढ़ता कदम** - पूनम कालश, सविता सिंघल, ए.के. मिश्रा एवं एस.के. शर्मा

28. **सोयाबीनः उत्तम प्रोटीन प्राप्ति का सस्ता स्त्रोत** - श्रीमति सुमित्रा मीना एवं एस.एन. औझा

खण्ड 6: कृषि सलाहकारी एवं अभिनव योजनाएं

29. **युवाओं को कृषि की ओर आकर्षित एवं बनाए रखने के लिए अभिनव पहल** - एम.एस. मीना, आर.बी. काले, एस.के. सिंह एवं हंसराज सैन

30. **किसान प्रथम योजना** - ए. श्रीनिवास एवं आर.बी. काले

31. **प्रधानमंत्री फसल बीमा योजनाः किसानों की आशा** - सुश्री अरूणा शर्मा

32. **मौसम पूर्वानुमान एवं कृषि सलाह** - चिरंजी लाल मीना, हेमन्त कुमार वर्मा, भवानीसिंह ईन्दा, अभिषेक पालड़िया एच.एम. मीना एवं विकास चौधरी

33. **स्मार्टफोन : किसानों के लिए वरदान** - अभिषेक पालड़िया, हेमन्त कुमार वर्मा, चिरंजी लाल मीना एवं भवानीसिंह ईन्दा

34. **कृषि क्षेत्र में बैंकों की भूमिका** - भवानीसिंह ईन्दा, चिरंजी लाल मीना, हेमन्त कुमार वर्मा एवं अभिषेक पालड़िया

आर्या
युवा कृषि उद्यमिता

ASCI
Agriculture Skill Council of India

सॉयल हैल्थ कार्ड
स्वस्थ धरा, खेत हरा

भाकृअनुप
ICAR

भाकृअनुप-कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान

(आई.एस.ओ. 9001-2015)

जोन-II, (काजरी परिसर) जोधपुर - 342 005 (राजस्थान)

फोनः 0291 2748412, 2740516, फैक्सः 0291-2744367

ईमेलः atarijodhpur@gmail.com, वेबसाईटः www.atarijodhpur.res.in